गीताई-चिंतनिका : विवरण

विनोबा

अध्याय 12 वां : श्लोक 12

गीताई के श्लोकों पर विनोबाजी की चिंतनात्मक टिप्पणियां 'गीताई चिंतनिका' नाम से पुस्तकरूप में प्रकाशित हैं। सन् १९६९ में, बिहार तूफान यात्रा में विनोबाजी कई दिन रोज घंटा, सवा-घंटा अपने अंतेवासियों को चिंतनिका पढाते थे। इस समय १२ वें अध्याय पर व्यक्त हुआ उनका (मूल मराठी) विवरण 'मैत्री' में हर माह क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है। ११ वें अध्याय का विवरण जुलाई ८४ से मार्च ८६ के अंकों में प्रकाशित हो चुका है।

मोटे अक्षरों का अंश मूल चिंतनिका पुस्तक का है और छोटे अक्षरोंवाला अंश नया विवरण है। – सं.

प्रयत्नें लाभतें ज्ञान पुढें तन्मयता घडे
मग पूर्ण फल-त्याग शीघ्र जो शांति देतसे 12

– प्रयत्न से ज्ञान की लब्धि होती है। उससे आगे तन्मयता प्राप्त होती है। तब परिपूर्ण फलत्याग (सधता है), जो शीघ्र शांति देता है –

श्लोक 3 से 5 में सगुण की और 8 से 11 में निर्गुण की चतुष्पद श्रेणी सूचित की गयी। निर्गुण, सगुण मिल कर हम आठ सीढियां उतरे। यह 12 वां श्लोक फल-त्याग का विवरण करनेवाला श्लोक है। प्रयत्न से ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान यानी फल-त्याग का ज्ञान। ज्ञान प्राप्त होने पर रुचि पैदा होती है। फिर तन्मयता और उसके बाद पूर्ण फल-त्याग सधता है। एक-बार कुंजी हाथ में

आ जाने पर पूर्ण फल-त्याग सधेगा, जो शीघ्र शांति देगा । अंततः शांति ही प्राप्त करनी है, तो वह पूर्ण फल-त्याग से मिलेगी ।

1 निर्गुण की अपेक्षा सगुण सुलभ है । उसमें भी कर्म-फल-त्याग सबसे सुलभ बताया गया । वह भी पूर्णरूप से कैसे हो, ऐसी शंका कल्पित कर उसके समाधान के लिए यह श्लोक कहा गया ।

यह इस श्लोक का प्रयोजन कहा । अब प्रयत्न के बारे में समझायेंगे ।

2 प्रयत्न यानी फल-त्याग का प्रयत्न । वासना पूर्णतः न मिटने पर भी उसके निरसनार्थ फल को अपने से अलग कर देना । फल की वासना गयी नहीं फिर भी फल को अपने से दूर, अलग कर देना, दूसरे को दे देना । जमीन की वासना हो, फिर भी भूदान दे देना ।

3 ज्ञान – फल-त्याग का ज्ञान । फल-त्याग के यथार्थ स्वरूप का आकलन । जमीन का दान दे कर भूमिहीनों में बांट दी, जमीन की मालिकी ग्रामसभा को समर्पित कर दी, गांववालों को समझाया कि आप-हम सब एक ही हैं और ग्राम-परिवार बन गया । यह जो ज्ञान है कि जमीन समाज की है, यह दान के यथार्थ स्वरूप का आकलन है ।

4 यह टिप्पणी नहीं, इसे भाष्य ही कह सकते हैं । इतनी बडी दूसरी टिप्पणी गीताई चिंतनिका में शायद ही होगी । **यह 12 वां श्लोक इस अध्याय की कुंजी है । परमेश्वर में मनोबुद्धि-समर्पण अर्थात् विचार और**

[illegible] दोनों को उसे सौंपने की मुख्य शिक्षा 8 वें श्लोक में दी गयी है (6 47)। मन और बुद्धि समर्पित कर देना यानी जीवन ही समर्पित कर देना – जीवन-नौका भगवान को अर्पित कर देना। यह न सधने पर 9 वें श्लोक में कथित तीव्र इच्छारूप छटपटाहट का अभ्यास-योग (8.8 में सूचित)। यह भी न सधे तो श्लोक 10 में कहा गया कि आंतरिक अभ्यास की झंझट छोड कर सीधे सारे कर्म परमेश्वर को अर्पित करें, जो अध्याय 9 से 11 तक का विषय है (9.27 ; 11.55)। कई लोग कहते हैं कि चित्त एकाग्र होता नहीं, ध्यान के लिए बैठते हैं तो चित्त इधर-उधर दौडता रहता है। इन लोगों को अभ्यास की झंझट लगती है। इसलिए कहा कि यह झंझट छोड ही दें और सीधे सभी कर्म समर्पित कर दें ईश्वर के चरणों में। भक्ति-मार्ग में ईश्वर छूटता नहीं, इसलिए यह सगुण भक्तियोग का अंतिम सुलभ साधन बताया। इससे अधिक सुलभ साधन भक्तियोग में कुछ भी शेष नहीं। परमेश्वर प्रेमगम्य है। तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका में मृदुभावगम्य कहा है। परंतु परमेश्वर केवल प्रेमगम्य और श्रद्धा से वश होने से सुलभतम होने पर भी जिसे परमेश्वर विषयक श्रद्धा भी भारी पडती है, यानी जिसकी दृष्टि में वह भी अव्यक्त कोटि में चली जाती है, उसके प्रति दया से प्रेरित हो 11 वें श्लोक में अंतिम कथन किया गया है कि परमेश्वर पर श्रद्धा न बैठ सके तो भी चिंता नहीं, सारे कर्मों का फल प्रयत्नपूर्वक अपने से अलग कर डाल, तो हो गया।

गीता की यह परम कृपा है। कोई भी ईश्वर को माननेवाला विचार यह नहीं कहेगा कि परमेश्वर का नाम न लें तो भी चलेगा, बिना ईश्वर का नाम लिये ही कर्म का फल अपने से अलग कर डालें तो हो जायेगा। ईश्वर को छोड दो, यह भाषा भागवत में नहीं मिलेगी। उसमें सुलभतम साधन है ईश्वर को समर्पण। भागवत भक्तिप्रधान है। वहां ईश्वर को छोडने की बात नहीं आयेगी। परंतु गीता कह सकती है कि चाहे तो भले ही ईश्वर का नाम छोड दें।

कोई भी भक्तिपंथ सहसा ईश्वर कल्पना को दूर धर देने की सम्मति नहीं दे सकता। कारण स्पष्ट ही है। ऐसी सम्मति देना यानी ऊपर देखने में तो भी, भक्तिपंथ की नींव ही उखाड फेंकने जैसा है। पर इस अनुभव के बल पर कि फलत्याग में भी पर्यायतः परमेश्वर-भक्ति आ जाती है, भक्तियोग के इस अध्याय में भक्ति की मर्यादा से बाहर की यह सुविधा दे डाली है। कोई भी भक्ति-पंथ, चाहे द्वैत हो, अद्वैत हो, रामानुज हो, पुरंदरदास हो, महाराष्ट्र का हो, कर्नाटक का हो, ईश्वरकल्पना को एक ओर रख देने को कभी नहीं कहेगा, क्योंकि भक्तिमार्ग की नींव ही ईश्वरकल्पना है। परंतु गीता ने भक्तिमार्ग की मर्यादा के बाहर की यह सुविधा दे रखी है। उसके बाद प्रस्तुत 12 वें श्लोक में इस बात का विवरण है कि यह प्रयत्नवादी फल-त्याग पूर्णता तक पहुंचाया जा सके, तो वह अंतिम पद की प्राप्ति करा देने में समर्थ कैसे बनता है। फलवासना न गयी हो, तो

भी प्रयत्नपूर्वक फल को अपने से अलग करते रहने से फल-त्याग की खूबी का मर्म समझ में आने लगता है। फिर साधक की उसमें तन्मयता होती है। दूसरे अध्याय की भाषा में, मानो उसकी उसमें समाधि लगती है। दूसरे अध्याय के 53 वें श्लोक में समाधि शब्द आया है—

श्रवणें भ्रमली बुद्धि तुझी लाभूनि निश्चय
स्थिरावेल समाधींत तेव्हां भेटेल योग तो

— बहुविध श्रवण से भ्रमित हुई तेरी बुद्धि जब निश्चय प्राप्त कर के समाधि में स्थिर होगी, तब तुझे वह योग प्राप्न होगा —

मतलब, यहां पूर्णतः दूसरे अध्याय का आधार लिया है। जब बुद्धि स्थिर होगी, तब निश्चय होगा। मनुष्य का निश्चय ही नहीं होता। एकबार निश्चय हो जायेगा तो तन्मय होगा, स्थिर होगा, योग प्राप्त होगा। प्रथम निश्चय कर, उसमें तन्मय हो जा, फिर, तत्परिणाम-स्वरूप **'नसे ज्यास अहंभाव नसे बुद्धींत लिप्तता' (यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते)** 18 17 इतनी **कोटि का पूर्ण फल-त्याग सधता है।** मतलब, 'यस्य नाहंकृतो भाव' इस कोटि का फल-त्याग। और 'हत्वापि स इमांल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते' इस कोटि की अलिप्तता। लिप्तता यानी आसक्ति। स्थानासक्ति, कार्यासक्ति, मनुष्यासक्ति, देहासक्ति अनेक प्रकार की आसक्ति होती है। यह जिसकी बुद्धि में नहीं, उस बुद्धि की कोटि का फल-त्याग। **उससे तत्काल शांति मिला करती है** (5. 12, 29)।

जिसे ऐसी शांति मिली, उसने सगुण उपासना भी पायी और निर्गुण उपासना भी। उसमें सगुण और निर्गुण दोनों उपासनाएं मानो एकरूप हो गयीं। ऐसे भक्त का लक्षण आगे 13 से 19 तक के श्लोकों में बताया है। 12 वें श्लोक में से 13 वां श्लोक निकलता है, यह बताने के लिए यह टीप है। स्पष्ट ही है कि यह पूर्ण पुरुष का लक्षण होने के कारण उसमें कर्मयोग और संन्यास की, व्यक्तोपासना और अव्यक्तोपासना की छटाएं मिश्रित हैं। पूर्ण पुरुषों के लक्षणों में सर्व साधनाएं सम्मिलित हैं। जहां पूर्णता होती है वहां सभी छटाएं इकट्ठा होती हैं। पूर्ण पुरुषों का गंतव्य एक ही होता है। कोई सगुण मार्ग से जाता है, कोई निर्गुण मार्ग से। कोई व्यक्तोपासना के द्वारा, कोई अव्यक्तोपासना के द्वारा। गंतव्य एक ही, इसलिए वहां सभी छटाएं सम्मिलित होती हैं। इसलिए ये भक्तलक्षण सबको भाते हैं और हर कोई ये अपने ही आदर्श के लक्षण हैं, ऐसा आग्रहपूर्वक वाद करता है। शंकराचार्य ने कहा है, ये लक्षण संन्यास के हैं। रामानुज ने कहा है कि ये लक्षण भक्त के हैं। हर कोई इसे अपने ही आदर्श के लक्षण मानता है। पर यह वाद-विवाद न करते हुए अंतिम 20 वें श्लोक के कथनानुसार उन लक्षणों को अपने में पचाना, उसका सतत अनुशीलन करना, यही सर्वोत्तम लक्षण है।

* *

वैज्ञानिक प्रयोगों की कसौटी पर जांचने के बाद ही विज्ञान-तथ्यों को पेश करता है।

पथदीप

विनोबाजी ने आचरण की कसौटी पर जांचने के बाद ही इन जीवन-तथ्यों को पेश किया है।

प्राण-प्रतिष्ठा के पंच-प्राण

[वर्धा के लक्ष्मीनारायण-मंदिर में मूर्ति-प्राण-प्रतिष्ठा-समारोह के अवसर पर]

विनोबा

जिस समारोह के निमित्त से हम यहां इकट्ठा हुए हैं, उसे प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव कहते हैं। प्राण-प्रतिष्ठा शब्द संभवतः हिंदूधर्म-कोश का हो सकता है। मैंने संभवतः शब्द इस्तेमाल किया, क्योंकि अन्य धर्मकोशों में उसके मिलने की संभावना कम है। प्राण-प्रतिष्ठा के मानी क्या हैं? मूर्तिकार ने भक्तिभाव से भक्तों की पूजा के लिए मूर्ति बनायी, उसे मंदिर में बिठा कर उसमें प्राण उंडेलना — उसमें, प्राण भर देना। प्राण भरना यानी अपनी श्रद्धा को ही भरना। यह है प्राण-प्रतिष्ठा का अर्थ! रूढि यह चली आयी है कि प्राण-प्रतिष्ठा की यह क्रिया वैदिक मंत्रों के साथ करें। परंतु वेद के बाद, मध्यकाल में भी जो वेदपरंपरा की भावनाएं प्रचलित रहीं वे वेद की ही हैं, वेदमान्य, पवित्र हैं, इसलिए उन भावनाओं के मंत्र भी प्राण-प्रतिष्ठा के लिए योग्य हैं। तो विधियुक्त पूजा शुरू

करने से पहले मूर्ति में चैतन्य भरने की बात है। मूर्ति धातु की होती है, मिट्टी की भी हो सकती है, लेकिन वह हलचल करने की शक्ति नहीं रखती। इसलिए भावना से उसमें चैतन्य भरना है। थोडे में, हमारा अपना परमेश्वर, अपना भगवान खुद हमें ही बनाना है। जैसे भगवान भक्त का कर्ता माना जाता है, वैसे भक्त भी भगवान का कर्ता है। हम एक-दूसरे के कर्ता हैं। हमारी भावना का अंतिम उत्कर्ष यानी हमारा भगवान! जिन लोगों की भावना में सुंदरता होती है, उनका भगवान सुंदर होता है। जिनकी भावना में प्रेम, सत्य होता है, उनका भगवान प्रेममय, सत्यमय होता है। जैसे हम वैसा हमारा भगवान!

मूर्तिपूजा हिंदूधर्म की स्वतंत्र कल्पना है। एक समय था, जब हिंदूधर्म ने अपना सौंदर्यसर्वस्व, कलासर्वस्व, भावसर्वस्व अपने मंदिरों में उंडेला था। हिंदूधर्म का इतिहास देखेंगे तो दिखायी देगा कि हिंदूधर्म ने अपनी भावनाएं जितनी अधिक से अधिक व्यक्त की जा सकती हैं उतनी सारी मंदिरों में व्यक्त की हैं। या यों कह सकते हैं कि जैसे पात्र में रस परिपूर्ण भर जाने पर वह बाहर बहने लगता है, वैसे हिंदूधर्म की भक्तिभावना अंदर परिपूर्ण भर कर बाहर बहने लगी, वही यह मूर्तिपूजा है।

ईश्वर के विषय में पहला विचार यह था कि ईश्वर अंतर्यामी है। मनुष्य, अन्य प्राणी, पृथ्वी या भिन्न-भिन्न जो पदार्थ हैं उन सबमें, उनके अंदर ईश्वर है। यह कल्पना थी। लेकिन आगे जब भक्ति-भावना का उत्कर्ष हुआ तब यह ख्याल हुआ कि जो अंतर में है वही बाहर भी है। जैसे सूर्य और प्रकाश, इनमें भेद नहीं है या नदी और पानी, इनमें भेद नहीं है, दोनों एकरूप ही

हैं; वैसे ही अंदर और बाहर दोनों में भेद नहीं है, दोनों एक ही
हैं। मनुष्य की भावना और कृति एक ही हैं। मनुष्य के मन में जैसी भावना होती है, वैसी ही उसकी कृति होती है। जब मन में क्रोधभावना होती है तभी बाहर क्रोध प्रकट होता है। [बल्कि आधुनिक शास्त्रज्ञ तो कहते हैं कि अंदर क्रोध होता है तब मनुष्य के रक्तबिंदुओं में भी फरक होता है।] इस प्रकार अंदर की भावनाएं ही कृति के द्वारा प्रकट होती हैं। तो फिर ईश्वरविषयक भावना ही अंदर बंद क्यों रहेंगी? मनुष्य की ईश्वरविषयक भावनाएं भी व्यक्त होती गयीं और जैसे भक्तिभावना का उत्कर्ष होता गया वैसे मनुष्य बाहर भी ईश्वर को देखने लगा।

इस भावना का उत्कर्ष होता गया वैसे प्रारंभ में ऋषियों ने तय किया कि यह जो सूर्यनारायण है, उसे भगवान मान कर उसकी पूजा करेंगे। बच्चे के लिए मां प्रेममूर्ति होती है, वैसे ऋषियों ने सूर्यनारायण को अपनी प्रेममूर्ति माना! प्रेममूर्ति के रूप में सूर्य को क्यों चुना? उन्होंने देखा कि जैसे भगवान अलिप्त होता है वैसे सूर्य भी अलिप्त है। जैसे ईश्वर ऊंचाई पर है वैसे सूर्य भी ऊंचाई पर है। ईश्वर जैसे सर्वत्र समान है वैसे यह भी सर्वत्र समान है, सर्वत्र समानरूप से किरणें फैलाता है, सभी को प्रकाश देता है। प्रकाश देने में भेदभाव नहीं रखता। अलावा इसके, सूर्य का सेवाभाव तो देखें! किसी आदर्श सेवक के समान आपके दरवाजे के पास आ कर खडा हो जाता है। दरवाजे को धक्का नहीं देता। वह अगर धक्का देगा तो भूचल से भी भयानक बात हो जायेगी! पर वह तो स्वामी की आज्ञा की राह देखते हुए बाहर खडा रहता है। स्वामी दरवाजा जितना खोलेगा उतना ही वह अंदर जायेगा!

फिर भगवान की तरह ही सूर्य स्वयं कुछ करता नहीं। केवल उसके अस्तित्व से ही सबकुछ होता रहता है। जैसे ईश्वर में ज्ञान है, वैसे सूर्य में भी प्रकाश यानी ज्ञान है। ईश्वर ज्ञानमूर्ति है वैसे यह सूर्य भी ज्ञानमूर्ति है। इस प्रकार सोच कर ऋषियों ने सूर्य को ईश्वर माना।

उसके बाद उसकी सेवा या पूजा की बात सोची। कैसे की जाये सूर्य की सेवा? जागृति ही सूर्य की सबसे बडी सेवा है। इसलिए उससे पहले अर्थात् सूर्योदय के पहले उठें। मुखमार्जन-स्नानादि से निपट कर सूर्य का दर्शन करें, सूर्यनमस्कार करें, इत्यादि।

इसके आगे का चिंतन यह था कि सूर्य का – अत्यंत ऊंचाई का ध्यान-चिंतन तो हो सकता है, परंतु सर्वेंद्रियों से उसकी सेवा कैसे हो सकती है? वह ऊंचाई पर है, सेवा के लिए तो भगवान जमीन पर चाहिए। इसलिए अग्नि को भगवान माना और उसकी उपासना करने लगे। अग्नि उत्तम मित्र है। दूर से भी मदद पहुंचाता है। रात के समय जंगल में रास्ता खो गया, कहीं मनुष्य-प्राणी की आवाज भी सुनायी नहीं दे रही है और सहसा दूर प्रकाश दिखायी देता है, ऐसे समय कैसी राहत मिलती है, आनंद होता है! वेद में अग्नि का वर्णन 'मनुष्यों का मनुष्य और देवों का देव' कह कर किया है। मतलब वह भगवान तो है ही, पर साथ ही मनुष्य जैसा बन कर मनुष्यों में मिल गया है। तो अग्नि घर का भगवान हो गया। अग्नि माता के समान है, सूर्य गुरुमूर्ति है। गुरु के साथ विनय के साथ बरतना होता है। मां के साथ तो कैसे भी बरताव करें! अग्नि से आप चाहे जो सेवा लीजिए। चाहे रसोई पका लीजिए, ~~चाहे बीड़ी सुलगा लीजिए~~। इसलिए प्रेम के लिए भी

अग्नि जरूरी माना गया। विवाह के लिए अग्नि की गवाही

आवश्यक मानी गयी। अग्निहीन घर यानी मृतघर। अग्निगृह पति है। **वसूनां पावकश्चास्मि**। वसु यानी वसतिस्थान का देवता। जहां पानी, वायु, सूर्य आदि वसु होते हैं, वही स्थान वसति करने योग्य होता है। वसुओं में अग्नि सर्वश्रेष्ठ माना गया। अग्नि श्रेष्ठ स्वामी और श्रेष्ठ सेवक है। मां के समान ही, अत्यंत आदरणीय होने पर भी वह आदर की अपेक्षा नहीं रखता। ईश्वर का भी ऐसा ही है। अगर कोई नास्तिक ईश्वर से कहे कि मैं तुमको पहचानता नहीं, तो ईश्वर कहेगा कि तुम भले ही मुझे न पहचानो, मैं तुमको पहचानता हूं। एकबार एक फकीर ने मुझसे कहा, मैं आपका ओम्-सोम् कुछ जानता नहीं। मैंने उससे कहा, तुम ओम् को न भी जानते हो, ओम् तुमको जानता है तो क्या करोगे? इस तरह एक पक्ष के नाता तोडने पर भी दूसरा पक्ष तोडता नहीं। यह जो गुण माता में, ईश्वर में है वही अग्नि में है। मृत्यु के समय मां की गोद मिली तो शांति, समाधान मिलता है। वैसे ही मृत्यु के बाद अपनी गोद में सुला लेनेवाला यह अग्नि है।

इसके आगे की सीढी थी अपने पूर्वजों की पूजा! थोडे में अब मनुष्य की सेवा-पूजा तक हम पहुंच गये। जीवित मनुष्य की सेवा करने के बदले मृत मनुष्यों की सेवा करने का सोचा, इसके पीछे एक विचार था। साधारणतया जीवित मनुष्यों के बीच कुछ दूरी-भाव-सा होता है, विरोध भी हो सकता है, वहां ईश्वर-दृष्टि रखना कठिन होता है, भारी जाता है; इसलिए सोचा गया कि जिन्होंने हमारे जीवन पर अनंत उपकार कर रखे हैं, ऐसे सर्वश्रेष्ठ पूर्वजों की ही पूजा करेंगे। इस प्रकार राम-कृष्ण आदि की पूजा

शुरू हुई। उन्हें अवतार माना गया। उनकी पूजा करना यानी उनका नाम-गुण गाना, उन गुणों का अनुकरण करना। तो भगवान अनुकरणीय हो गये।

इन सभी विषयों में प्राण-प्रतिष्ठा की आवश्यकता है ही। अन्यथा सूर्य यानी एक धातु का जलनेवाला गोल ही रह जायेगा। या अग्नि यानी एक जड पदार्थ ही रहेगा। इस कल्पना के साथ पूजा नहीं हो सकती। पूजा के लिए उन पदार्थों में हमारी भावनाओं के गुण प्रस्थापित करने होते हैं। परमेश्वर की पूजा यानी इन गुणों के अनुकरण का, वैसा आचरण करने का प्रयत्न ! राम की प्राण-प्रतिष्ठा की, मतलब, जो एक पूर्वज – रामचंद्र हो गये, उनमें जो गुण थे और जो गुण नहीं थे, वे सब उनमें भर दिये। उनके अपने गुण तो उनके हैं ही, लेकिन जो गुण उनमें नहीं थे वे भी हमारी भावना के – कल्पना के अनुसार उनमें भर देने हैं।

इस प्रकार गुणों का आरोपण करने में सत्य की हानि नहीं है। वह मिथ्या कल्पना नहीं है। असल में, मनुष्य के अंदर जितनी भावनाएं होती हैं, उन सबको समझ पाना संभव नहीं है; क्योंकि मनुष्य की सबकी सब भावनाएं प्रकट नहीं हो सकती हैं। जैसे कोई आदमी खून करता है तो उस बाह्य कृति से कहीं अधिक खुनस उसके अंदर होती है। कोई आदमी काशीयात्रा में चीनी खाना छोड देता है तब देखने में तो इतना ही दीखता है कि उसने एक छोटी-सी चीज का त्याग किया है। परंतु वह करते हुए उसके अंदर जो भावना होगी वह उससे कहीं अधिक उत्कट होगी। तब उसने क्या-क्या सोचा होगा हम समझ नहीं सकते। इसलिए उसकी उस छोटी-सी कृति पर से हमें अंदाज करना होगा कि कैसी उत्कट

उसकी भावना होगी। वैसे ही रामचंद्र की कृति ही इतनी उज्ज्वल

थी तो उनकी वृत्ति कितनी उज्ज्वल होगी! इसलिए राम में अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार उन गुणों को भी भर देना है, जो उनमें दिखायी नहीं दिये थे, प्रकट नहीं हुए थे। जिसकी जितनी ऊंची कल्पना हो सकती है उतना वह अपने राम को ऊंचा करे। वाल्मीकि ने अपनी कल्पना के अनुसार राम को ऊंचा किया। तुलसीदासजी ने राम को उससे भी दो उंगली ऊपर चढा दिया। और आज रामचरित लिखनेवाला तीसरा कोई हो, वह राम को उससे भी ऊपर चढा सकता हो तो चढाये। इसमें किसी प्रकार की मिथ्या कल्पना या सत्य की हानि नहीं है।

मूर्तिपूजा की उपर्युक्त सभी कल्पनाएं इसी उद्देश्य से की गयीं हैं कि परमेश्वर की पूर्ण सेवा कर सकें। और मनुष्य के लिए अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य की भावना को समझना ज्यादा सहज, संभवनीय है, इसलिए मूर्तिपूजा मनुष्य-स्वरूप में रूढ हुई। मैं मानता हूं कि यह हिंदूधर्म की अधोगति नहीं, प्रगति है।

परंतु आज मूर्तिपूजा की क्या हालत है? वह मृतप्राय है। फिर भी वह धर्म की हरारत है, धुगधुगी है। जब तक यह धुगधुगी है तब तक धर्म को फेंक नहीं सकते। मान लें, हमारी मां बीमार है, डॉक्टर ने बता दिया है और हम भी जान गये हैं कि वह अब एकाध-दो घंटों से ज्यादा जीयेगी नहीं, लेकिन जब तक उसकी देह में गरमी है, धुगधुगी है, तब तक हम उसको जलायेंगे नहीं। वैसे ही यद्यपि धर्म मृतप्राय हो गया है, जब तक मूर्तिपूजा है तब तक उसको फेंक नहीं सकते। धर्म तो मां से भी कहीं अधिक प्रेम करनेवाला है। मनु का वाक्य है –

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठत:
न पुत्र-दारा न ज्ञाति: धर्मस्तिष्ठति केवल:

इस पर से पता चलेगा कि धर्म का धार्मिकों पर कितना प्रेम होता है। इसलिए ऐसे धर्म पर हमें भी वैसा ही प्रेम करना चाहिए। हिंदूधर्म में मूर्तिभंजन का तत्त्व नहीं है। हिंदूधर्म में पूजा के लिए मूर्ति चुनने का स्वातंत्र्य है, परंतु मूर्ति तोडने का स्वातंत्र्य नहीं है। वह तो एक प्रकार की हिंसा ही है।

अब सवाल यह है कि यह प्राण-प्रतिष्ठा कितने प्रकार से हो सकती है? वह कौन पवित्र, शुभ दिन था, याद नहीं, पर उस दिन मुझे एक कल्पना, एक विचार सूझा कि हमारे पांच प्रकार के प्राण होते हैं, इसलिए मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा भी पंचविध होनी चाहिए। 'पांच' की संख्या को हम बहुत महत्त्व देते हैं। 'पांच बोले परमेश्वर' कहा जाता है। इसलिए जैसे, प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान, ये हमारे पंच-प्राण हैं वैसे प्राण-प्रतिष्ठा के भी पंच-प्राण हैं – शांति, ज्ञान, स्वच्छता, प्रेमभावना और सेवावृत्ति।

पहला प्राण है शांति। अर्थात् मंदिर में शांति होनी चाहिए। आज हमारा जो जीवन है उसमें शांति के लिए अवकाश ही नहीं रहा है। सर्वत्र धांधली, गडबडी ही है। परंतु मंदिर में प्रवेश करते ही शांति का अनुभव आना चाहिए। हम देखते हैं कि हमारे पूर्वजों ने जहां तक हो सके पहाड – पर्वतों के शांत स्थानों पर ही मंदिर खडे किये हैं, वह इसी लिए कि मंदिरों में शांति का अनुभव हो। पहाड – पर्वत न हो तो भी साधारणतया मंदिर गांव के बाहर होता था। और अगर बसती के बीच में हो तो मंदिर की चारों ओर पर्याप्त खुली जगह – प्रांगण रखा जाता था। माना जाता है कि

मंदिर को मकान चाहिए, वह इसी लिए कि बाहर की दुनिया से
जरा दूर रह कर शांति प्राप्त कर सकें।

दूसरा प्राण है ज्ञान। मंदिर की ओर से ज्ञान का प्रचार होना चाहिए। वहां भजन, कीर्तन, पुराण, भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रवचन, सभाएं आदि होते रहें। मंदिर में आने पर कुछ न कुछ अच्छा श्रवण करने को मिले। फिर, मंदिर में जो भी चीजें रखी जायेंगी वे ज्ञानपूर्वक, विचारपूर्वक रखी जायें। यहां यह परदा टेढा क्यों रखा गया है? इसका कारण होना चाहिए। हर चीज का कारण हो, हर चीज का स्थान निश्चित हो। तब उसमें ज्ञान के साथ सौंदर्य भी आ जाता है।

हिंदूधर्म की मूर्तिपूजा यानी हिंदूधर्म के सौंदर्य का विकास है। इतिहास में जानकारी है कि कोणार्क (उडीसा) का मंदिर बांधने के लिए दो सौ साल लगे। और वह बांधने का काम लोगों ने खुद किया। अलग-अलग भक्त आते, अच्छी-अच्छी सुंदर वस्तुएं ले आते और मंदिर का काम पूरा करते। लोग मानते थे कि जैसे-जैसे मंदिर का काम थोडा-थोडा बढ रहा है वैसे-वैसे हमारा धर्म भी विकसित होता जा रहा है। हमारे लोगों की कल्पना यह थी कि जो कुछ सुंदर है, वह सब मंदिर में हो। लेकिन आज की सौंदर्य की भावना क्या है? अगर सुंदर गुलाब का फूल देख लेंगे तो उसे पेड से तोड लेंगे और अपने गंदे नाक से उसे सूंघेंगे। मुझ तो वह दृश्य बिलकुल गंदा मालूम होता है। हमारे धर्म की भावना तो यह है कि सुंदर फूल हो तो वह भगवान को अर्पित करें। यहां तक कि भगवान को जो फूल चढाना है या जो अक्षत का दाना

चढाना है, वह खंडित नहीं होना चाहिए। मूर्ति भी खंडित नहीं होनी चाहिए। इसके पीछे भी सौंदर्य की भावना है।

एकबार मैं रायगढ का किला देखने गया था। रायगढ छत्रपति शिवाजी की राजधानी थी। मैंने देखा, वहां की सब बडी-बडी इमारतें टूट गयी थीं, लेकिन शिवाजी की समाधि पक्की थी। उसके बाद मैं प्रतापगढ पर गया। वहां का भी सब टूट गया था, लेकिन दो सौ साल पुराना देवी का मंदिर जैसा का वैसा था। उसे देख कर मेरे मन में विचार आया कि जिस शिवाजीमहाराज ने इतना पक्का मंदिर बनवाया, क्या वे अपने लिए पक्की इमारत नहीं बांध सकते थे? जरूर बांध सकते थे। लेकिन इसमें एक दृष्टि रही है। समर्थ रामदास ने कहा है – **देवाचें वैभव वाढवावें** (भगवान का वैभव वढायें)। इसके अनुसार शिवाजीमहाराज ने जो कुछ वैभव, सौंदर्य, ऐश्वर्य था, वह सब उस मंदिर के लिए इस्तेमाल किया। अपने महल या अन्य मकानों की चिंता की नहीं। रायगड पर शिवाजी की समाधि का जो पत्थर था वह धूप-बारिश में पडा हुआ था। कुछ लोगों को लगा की वहां पक्की समाधि बांधना चाहिए, तो वैसी बांध दी। असल में वह पत्थर तो कह रहा था कि अरे, जिसने जीते-जी अपनी देह, स्वराज्य के लिए धूप में तपायी, बारिश में भिगोयी उसकी समाधि के लिए छत्र किसलिए चाहिए! अगर तुम सचमुच उनकी समाधि खडी करना चाहते हो तो उन्हीं के जैसे अपनी देह धूप में तपाओ, बारिश में भिगोओ। सार यह है कि हमारी भावना यह थी कि हमारा उत्तम से उत्तम सबकुछ मंदिर में हो।

तीसरा प्राण है स्वच्छता। मंदिर में स्वच्छता होनी चाहिए। कैसी स्वच्छता? ज्ञानदेवमहाराज के कथन के अनुसार, अधिष्ठान

डोळां प्रकट दिसे (अधिष्ठान आंखों को प्रकट दीखता है)। मंदिर

में प्रवेश करते ही मनुष्य को भगवान का आभास, दर्शन होना चाहिए। मन में पावित्र्य का संचार होना चाहिए। नदी को देख कर ईश्वराभास क्यों होता है? वहां की स्वच्छता, गंभीरता आदि के कारण। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने जहां नदी-किनारा है, दो-चार पेड हैं, स्वच्छ, शांत जगह है वहां मंदिर खडा कर दिया। आज हमारे पास यह दृष्टि ही रही नहीं है। उधर रस्कीन भी यही शिकायत कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम स्विट्झलँड जैसे प्राकृतिक सौंदर्य के देश में कलकारखाने खडे कर के सारे सौंदर्य को नष्ट कर रहे हो। स्वच्छता का, बाहर की प्रकृति का इस प्रकार असर होता है। इसलिए प्रार्थना तो खुले आकाश के नीचे होनी चाहिए। लेकिन बारह माह खुले में प्रार्थना नहीं हो सकती। इसलिए एक प्रार्थना-मंदिर हो। उसके आगे प्रशस्त चबूतरा हो, तो जब बारिश नहीं आयेगी तब चबूतरे पर और बारिश में अंदर बैठ सकते हैं। फिर वहां भी जितना हो सके उतना प्रकृति का सान्निध्य मिले। मंदिर में दिये कैसे हों? आसमान में सितारे होते हैं वैसे। यानी ठंडक पहुंचानेवाले, अतिप्रकाश न देनेवाले, सितारों की याद दिलानेवाले। मंदिर में अल्पना की जाती है, उसके पीछे भी यही कल्पना है। ऊपर आसमान में जो चंद्र, सूर्य, नक्षत्र होते हैं, वैसे नीचे जमीन पर खींचने की कल्पना है। छोटे-छोटे बिंदुओं की आकृति खींचनी है। रेखाकृति नहीं। क्योंकि आसमान में जो आकृतियां होती हैं, वे अलग-अलग सितारों की बनी हुई होती हैं। उनमें रेखा तो काल्पनिक ही होती है।

मंदिर का चौथा प्राण है प्रेमभावना! मंदिर में सबके लिए प्रेम होना चाहिए। परंतु आज हम एक को मंदिर में आने की

इजाजत देते हैं और एक को नहीं देते। इससे हम मंदिर का कितना बडा प्राण खो रहे हैं। मैं मानता हूं, किसी को मंदिर में आने के लिए मना करना यानी एक – स्वच्छता की भावना का दूसरी – प्रेमभावना पर किया हुआ आक्रमण है। मंदिर में स्वच्छता तो होनी ही चाहिए। लेकिन अगर, स्वच्छता और प्रेमभावना, इन दोनों में चुनाव करने का प्रसंग ही आ जाये तो मैं प्रेमभावना का स्वीकार करूंगा। स्वच्छता को योग्य महत्त्व देते हुए मैं कहना चाहता हूं कि अगर मंदिर में कोई एक छोटा बच्चा पेशाब कर दे, तो उसे गंगाजल मान कर उस मासूम बच्चे पर नाराज नहीं होना चाहिए। स्वच्छता का पूर्ण प्रयत्न करने पर भी हरिजनों के प्रवेश से मंदिर में थोडी गंदगी आ जाये तो उसे सहन करना चाहिए। क्योंकि, वैसी गंदगी सहन न करें और उन्हें प्रवेश न दें, तो उससे अधिक श्रेष्ठ और अधिक महत्त्व के प्राण – प्रेमभावना को गंवा देंगे।

सेवा-वृत्ति मंदिर का पांचवा प्राण है। मंदिर के द्वारा बीमारों की सेवा आसपास के लोगों की सेवा अवश्य होनी चाहिए।

आज हम लगभग इन पांचों प्राणों को गंवा बैठे हैं। शांति या ज्ञान के बारे में तो बोलने की ही बात नहीं। स्वच्छता के बारे में भी क्या कहें! गांव-गांव में मंदिरों की जो स्थिति है, उसे देख कर संदेह होता है कि इन मंदिरों में कौन आते हैं, मनुष्य या पशु? मंदिर टूटे-फूटे हैं। सफाई तो बिलकुल नहीं। उसके आसपास तो मानो कचरे का घूरा ही है। प्रेमभावना की स्थिति का वर्णन तो अभी किया ही। और सेवा-वृत्ति का तो नामोनिशां नहीं रहा।

ऐसी स्थिति होने पर भी मेरी कल्पना है कि यह धर्म इतना मजबूत जडवाला (चिवट) है कि वह मरनेवाला नहीं है। मैं कोई

भविष्य वादी नहीं हूं ! लेकिन अगर हर मनुष्य कम से कम इतना भी तय करता है कि मैं इसको मेरे मरने से पहले मरने नहीं दूंगा, तो पर्याप्त है । जिस धर्म में राम-कृष्ण आदि अवतार हो गये, आज के गिरावट के काल में रामकृष्ण परमहंस जैसे महापुरुष हो गये, जहां ऐसी एक भी शति गयी नहीं जब हिंदुस्तान के किसी न किसी भाग में संतों की वर्षा न हुई हो, जिस धर्मभूमि का वर्णन ऋषियों ने **दुर्लभं भारते जन्म मानुषं तत्र दुर्लभम्** कह कर किया है, जिसकी भूमि के रज:कणों को साधुसंतों के चरणों का स्पर्श हुआ है, जिस पर परमेश्वर की इतनी कृपा है वह धर्मभूमि कभी नष्ट होगी, ऐसा लगता नहीं । परमेश्वर की कृपा अभी खतम नहीं हुई है । हम अगर प्रयत्न करेंगे, तो पुन: उसमें प्राण भर कर तद् द्वारा हिंदुस्तान की और दुनिया की सेवा कर सकेंगे ।

पथदीप के (अप्रकाशित) प्रवचन आ.श्री शिवाजी भावे ने कृपा-पूर्वक 'मैत्री' के लिए दिये हैं

वर्धा
20.1.34

एक वेद-मंत्र का अर्थ

श्री महादेवभाई देसाई का प्रश्न
विनोबाजी का उत्तर

पूज्य विनोबा,

अहमिंद्रो न परा जिग्य इद्धनं ।
न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।।
सोममिन्मा सुन्वंतो याचता वसु ।
न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ।। ऋग्वेद १०. ४८. ५

इस ऋग्वेद-मंत्र का अर्थ बतायेंगे ? इसमें **'सोम'** क्या है ? एक भाई ने सोम का अर्थ 'आत्मा' किया है और गीता में 'सोमपाः' का आत्मज्ञानी के रूप में वर्णन किया है ।

सेवक महादेव का प्रणाम

29.5.37

श्री महादेवभाई,

आपका जिज्ञासितार्थ मंत्र का पद-पाठ

अहं । इंद्रः । न । परा । जिग्ये । इत् । नम् ।
न । मृत्यवे । अव । तस्थे । कदा । चन
सोमं । इत् । मा । सुन्वंतः । याचत । वसु
न । मे । पूरवः । सख्ये । रिषाथन

अन्वय

अहमिंद्रः । धनं न पराजिग्य इत् ।
मृत्यवे कदाचन नावतस्थे । हे सोमं सुन्वंतः,
मा इत् वसु याचत । हे पूरवः, मे सख्ये न रिषाथन ।

अर्थ-प्रवेशिका

ऋषि भावावस्था में खुद अपने को ईश्वररूप में देख कर स्व-महिमा (अर्थात् ईश्वर-महिमा 'अहं' की भाषा में) वर्णन करता है। यहां 'इंद्र' शब्द परमात्मा के लिए, ईश्वर के लिए संज्ञा है।

मंत्रार्थ

मैं इंद्र हूं, कभी धन को खोता ही नहीं हूं और मृत्यु के सामने झुकता नहीं हूं। हे सोमसवन करनेवाले याज्ञिको, तुम मेरे पास ही कर्मफल मांगते हो। हे सेवको, मेरे सख्य में रहते हुए तुम्हारा नाश नहीं होता।

व्याख्यान

यहां ईश्वर के (1) धनंजयत्व (2) अतिमृत्युत्व (3) फल-दातृत्व (4) भक्त-रक्षकत्व, इन चार गुणों का सोऽहंतापूर्वक वर्णन है। ऐसी सोहंता वेद, उपनिषद और भगवद्गीता में, वैसे ही साधकों के अनुभव में प्रसिद्ध है।

टिप्पणी

'वसु' – उपनिषद में कर्म-फल-सूचक है। जैसे, **स एष वसुदानः** – वह यह (परमात्मा) फल-दाता है। 'वसु-देव' का यही अर्थ है। 'देव' यानी देनेवाला।

'पुरु' – मनुष्यवाचक शब्द; परंतु 'मनुष्य' शब्द मनुष्य की मनन-शीलता सूचित करता है वैसे 'पुरु' – पूर्ण करनेवाला, जहां अपूर्णता है वहां उसको पूर्ण करने का प्रयत्न करनेवाला – सेवक।

मनुष्य = विचारक }
पुरु = सेवक } मनुष्य

सोम यानी क्या ?

यह आपका मुख्य प्रश्न है। सोम का अर्थ वेद में इस प्रकार है–

(1) आधिभौतिक – सर्व-वनस्पति-साररूप एक काल्पनिक वल्ली, और उसके प्रतिनिधि के तौर पर यज्ञादि में उपयोग की जानेवाली एक विशिष्ट वल्ली।

(2) आधिदैविक – इसके देवता के रूप में चंद्रमा।

(3) आध्यात्मिक – इसके अंतर्यामीस्वरूप परमात्मा।

कभी अर्थ 1 होता है; कभी 2; कभी 3; कभी 1+2; कभी 2+3; कभी 1+3; और कभी 1+2+3। प्रस्तुत मंत्र में, वैसे ही गीता के 'सोमपाः' में अर्थ 1 है। जिन्होंने, जैसे कि आपने लिखा है, गीता के 'सोमपाः' का अर्थ 'आत्मज्ञ' किया है, वे 'गतागतं कामकामा लभन्ते' भूल गये। इस मंत्र में भी सोम-सवन करनेवाला 'वसु-याचे' है ही। वस्तुतः यहां 'सोम' का महत्त्व ही नहीं है। कर्म करनेवालों को फल ईश्वर देता ही है; यह प्रसिद्ध न्याय ऋषि ने भावावस्था में अपने पर आरोपित कर लिया है। वह विश्वात्मभाव अथवा ईश्वरभाव ही इस मंत्र की मुख्य वस्तु है।

अब जिसमें 'सोम' का अर्थ स्पष्टरूप से परमात्मवाचक है, ऐसा एक मंत्र – सार्थ – पेश कर के समाप्त करता हूं।

ब्रह्मा देवानां पदवी: कवीनां
ऋषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां
सोम: पवित्रमत्येति रेभन् ऋग्वेद ९.९६.६

सोम (परमात्मा) (मानो) गर्जना करता हुआ 'पवित्र' (हृदय) में से प्रकट होता है। जो सोम देवों में ब्रह्मदेव है, कवियों में पदज्ञ है, विप्रों में ऋषि है, मृगों में सिंह है, गृध्रों में श्येन है और जंगल में कुल्हाडी है। गीता के विभूतियोग का मूल इस मंत्र में है। सोम यानी परमात्मा, यह मुख्य अर्थ तो यहां है ही।

साथ-साथ, सोम-रस 'पवित्र' (ऊन) में से प्रकट होता है।

चंद्र 'पवित्र' (आकाश) में से प्रकट होता है। सोमरस ऊन में से छाना जाता है। चंद्रकिरण भी मानो आकाश के फिल्टर में से निकल कर हमें नहीं मिलते?

नालवाडी : 9.6.37 **विनोबा का प्रणाम**

आपसे मैंने जो पाया,
उसका खयाल आपको
होना संभव भी नहीं है।

जीवन-निष्ठा का वरदान

दादा धर्माधिकारी

पूज्य विनोबा की

सेवा में,

आज गुरुपूर्णिमा है। सहज भाव से ही आपको पत्र लिखने की इच्छा हुई। वैसे खास कारण कुछ भी नहीं है। आज तक गुरुपूर्णिमा के दिन मैंने आपको कभी पत्र लिखा नहीं। परंतु आज बिना कोई कारण ही लिखने की इच्छा हुई।

अपने जीवन में मैंने जब-जब स्थित्यंकारी निर्णय किये, तब मेरे पुण्यश्लोक पिताजी, परमपूज्य भाऊसाहब (दादा के चाचा), तथा आप, ऐसे तीन व्यक्तियों को पत्र लिखे। 1921 में, जिस वक्त मेरा नया जन्म हुआ (गांधीजी के पास आगमन), उस वक्त आपसे मेरा परिचय ही नहीं था। परंतु उसके बाद जब आपकी और मेरी पहली ही मुलाकात हुई, उस समय मेरे चित्त पर कभी भी न मिटनेवाली छाप पडी।

वह प्रसंग मुझे आज भी याद आता है। आपके आश्रमवासी साथियों में से परांजपे या गोपालराव काले, किसी का ऑपरेशन हुआ था। डॉ. परांजपे के 'समर्थ रुग्णालय' में आप बीमार के पास रहने के लिए आये थे। मैंने राष्ट्रीय शिक्षण पर अंग्रेजी में एक

निवेदन तैयार किया था। उस विषय की चर्चा करने आपके पास आया था। आपकी भेदक दृष्टि का तेज आपके उस पत्थर जैसे चश्मे में से मानो मेरे अंतःकरण का नाप ले रहा था। मैंने कहा, 'विनोबा, औद्योगिक तथा बौद्धिक शिक्षण का समुच्चय कर के उसमें हृदय के विकास का शिक्षण जोडना चाहिए। ऐसा इस निबंध में प्रतिपादित किया है।' आपने तुरंत ही कहा, 'आप जिसे बौद्धिक शिक्षण कहते हैं, उसे मैं शाब्दिक शिक्षण कहता हूं। उससे बुद्धि का विकास होता है, यह निरा भ्रम है।' तबसे शाब्दिक और बौद्धिक यह भेद चित्त पर प्रतिबिंबित हुआ। और इस बोध का मेरे जीवन पर असर हुआ। उसके बाद हमारा परिचय बहुत ही बढता गया और मेरी ओर से उसका पर्यवसान श्रद्धायुक्त स्नेह में हुआ, आपकी ओर से कृपापूर्ण वात्सल्य में हुआ।

1925-26 में प्रस्थानत्रयी का अध्ययन करने के लिए जब मैं सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र छोड कर भाऊसाहब के चरणों में जा बैठा, तब भी मैंने आपको एक पत्र लिखा था। उसके बाद मैं मूलतापी में था, तब बीच-बीच में आपके पत्र आते थे। उनमें आप लिखते थे, 'मुझे बिना कोई कारण ही आपकी याद आती है . . .' उन पत्रों में आप बार-बार एक ही बात मुझे सुझाते थे, 'सारे तत्त्वज्ञान का विचार जीवन की दृष्टि से कीजिए, पांडित्य की दृष्टि से अध्ययन करने से कोई लाभ नहीं।' फिर से मुझे शाब्दिक शिक्षण और बौद्धिक शिक्षण, इस आपके विश्लेषण की याद आयी। परम पूज्य भाऊसाहब ने मुझे बुद्धि-निष्ठा की दीक्षा दी। आपने जीवन-निष्ठा का वरदान दिया।

1930 में फिर से मेरे जीवन में स्थित्यंतर का समय आया। उस समय फिर से आपको पत्र लिखा था। 1930 से 1933 के बीच

काफी समय कारागृह में गया। उसके पश्चात् आपके सान्निध्य का तथा सत्संग का भी अधिक प्रमाण में लाभ हुआ। और एक प्रकार का अनिर्देश्य संबंध बना। 'अनिर्देश्य' कहने का कारण उसकी उत्कटता और पवित्रता भाषा में आकलन होने जैसी नहीं है।

1942 से 45 तक कारागृह में आपकी अत्युत्कट ईश्वरनिष्ठा का संसर्ग मुझे होने लगा। मेरी ईश्वरनिष्ठा अधिक असंदिग्ध बनी। आर्तता के बदले हार्दिकता महसूस होने लगी। तडपन के साथ ही एक प्रकार का आश्वासन ही महसूस होने लगा। और उसने बिलकुल अनजाने ही मेरी ईश्वर-निष्ठा में बल भर दिया। जीवन के सभी क्षेत्रों में अभेद के प्रयोग करने की मेरी हिम्मत बढी। इसलिए गुरुपूर्णिमा को सहज ही आपकी याद आयी।

आपका आशीर्वाद है ही, परंतु वह अ-कारण ही मांगने की इच्छा होती है, इससे अधिक कुछ नहीं।

स्नेहांकित

दादा

पुनश्च : और एक बात लिखने को मन करता है। वाचालता के लिए मैं प्रसिद्ध हूं। अनजाने कभी मैंने लोगों को शब्दों से घायल किया है। आपने मुझे मेरी जीवन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी एक सूत्र सिखाया, "मनुष्य वाचाशुद्ध होता है तब वाचासिद्ध बनता है।" मैंने कभी उपवास नहीं किया, मौनव्रत नहीं धारण किया। परंतु आवश्यकता हो तब आहार के बिना रहना और आवश्यकता हो तब चुप रहना आपके इस शुद्धि और सिद्धि संबंध-सूचक सूत्र पर से मैंने सीखा।

ऐसी कितनी ही बातें केवल आपके बीच-बीच में और मर्यादित अंतर से मिले सत्संग से मेरे जीवन में उतरीं और भीतर भिन गयीं। एक तरह से आनुवंशिक संस्कार से वचपन से ही मुझमें भावुकता थी ही। आगे जा कर विज्ञानवादी नास्तिकता आयी। उसके बाद भाऊसाहब के प्रभाव से अध्यात्म के और ईश्वर के विषय में बौद्धिक विश्वास निर्माण हुआ। परंतु उस विश्वास का निष्ठा में परिपाक आपकी भक्तिपीयूषपूर्ण, ज्ञानयुक्त ईश्वराराधना के कारण हुआ।

बापू के पास आने के पहले हमारे लिए देश ही भगवान था, मातृभूमि ही जगन्माता थी। उसके बाद दोनों भगवान की विभूति हैं, भगवान दोनों में ओतप्रोत हैं, अलावा दशांगुल शेष भी हैं, यह बोध बापू ने चित्त पर अंकित किया और जीवन में उतारने में मदद की। तबसे जीवन को भगवान का अधिष्ठान प्राप्त हुआ।

आपसे मैंने जो पाया उसका आपको खयाल होना संभव भी नहीं है। वह खयाल आपको आये इसलिए यह नहीं लिखा है। आज गुरुपूर्णिमा के प्रसंग पर बिलकुल ही अनजाने मन में जिन भावनाओं का उद्रेक हुआ, वह सब लिख डाला, इतना ही।

दादा
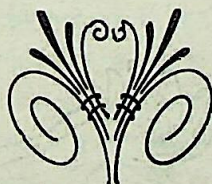
तुम्हें प्रणाम कर . . .

वीणा

ब्र. वि. मं. की सदस्या
मातृभाषा असमीया

तुम्हें प्रणाम कर हम रजत प्रभात मनायेंगे
जीवन की हर क्रिया में तुम्हारा अधिष्ठान रखेंगे
शुरुआत की प्रातः बेला में तुम्हारे समक्ष चलेंगे

मध्याह्न की धूप में तुम्हारे चरणछत्र सिर धरेंगे
बारिश आयी तो कृपा की धार में जीभर नहायेंगे
तुम जहां रहे, हमें जहां रखा, वहीं डटे रहेंगे

अपराह्न के हीरक में तुम्हारी कीर्ति चमकायेंगे
काल भूल कर स्नेहसाधन प्रक्रिया अपनायेंगे
कटुक त्याग कर गुणनिवेदन का व्रत ले लेंगे

सायं अमृतमहोत्सव, तुम्हारा पूर्णत्व, (हम भी) अपनायेंगे
जीवन के हर क्षण में तुम्हें नमन कर चलेंगे
गलती हो तो क्षमा कर प्रभो ! सुपथ बतलायेंगे ?

उन छः दिनों की

सन्निधि में

शिवाजी न. भावे

'एकमेवाद्वितीयं' कोटी का पहला व्यक्तिगत सत्याग्रह उनके अपने निवासग्राम पवनार में ही हुआ। उसका प्रतिध्वनि देशभर उठा और अखिल हिंदुस्तान की राजनीति सत्याग्रह के आसपास केंद्रित हो गयी। इस बात को तीन महीने हो गये और तीन माह की जेल की सजा पूरी कर तारीख 15.1.41 को विनोबाजी वर्धा पहुंचे। तुरंत ही, महात्माजी की सलाह के अनुसार पुनः सत्याग्रह करने का तय रहा। विनोबाजी अब कुछ दिन यहां रहेंगे, पुनः उनकी सत्संगति का लाभ मिलेगा, नित्य नया प्रकाश देनेवाले उनके ज्ञानगर्भित शब्द सुनने मिलेंगे, यह स्थिति अब रही नहीं थी। यहां के रोज के, परिचित सादे-भोले लोगों का मार्गदर्शन करने के बदले अब अखिल हिंदुस्तान के सत्याग्रहियों का मार्गदर्शन करने का काम उनकी राह देख रहा था। और यह तो स्पष्ट ही था कि इस महापुरुष के द्वारा यही भूमिका सिद्ध होनेवाली थी कि सत्याग्रही जेल से छूट भी जाये, उसे सत्याग्रह के अलावा और कुछ सूझना ही नहीं चाहिए। तो तय रहा कि दो ही दिन के बाद यानी 17.1.41 को सुबह 9 बजे शेगांव में सत्याग्रह होगा। और जैसे वर्षाऋतु में नदियां पूरे वेग से समुद्र की ओर दौडती हैं वैसे चारों ओर से लोग सेवाग्राम आने लगे।

सुबह साढे सात–पौने आठ का समय । सूर्य की किरणें शेगांव की झोंपडियों पर फैलने लगी थीं । इसी गांव के नजदीक ही तो महात्माजी की सेवा के लिए बसायी बस्ती – सेवाग्राम है । यहीं तो वह प्रयोगशाला है, जहां अनेकविध काम चल रहे हैं । उन अनेकविध कार्यों और कार्यकर्ताओं की झोंपडियां भी सूर्यप्रकाश से प्रकाशित होने लगीं ।

झोंपडियों के बाहर, खुली जगहों पर, जहां-तहां लोगों के जमघट थे । कोई आपस में हास्य-विनोद कर रहे थे । कहीं अटकल लगायी जा रही थी कि विनोबाजी को भाषण से पहले ही पकड लेंगे । कोई कह रहा था, पुलिस को भी विनोबाजी का भाषण सुनने को अच्छा लगता है, वे पूरा भाषण सुनेंगे और बाद में ही पकडेंगे । उधर कुछ लोग मंच तैयार करना, बैठक बिछाना आदि सभा की तैयारी में लगे हुए थे । फोटोग्राफर, रिपोर्टर तो कभी के तैयार थे । नये-नये लोग आ रहे थे, आते ही पूछताछ कर रहे थे – 'विनोबाजी क्या कर रहे हैं ?' 'विनोबाजी कहां हैं ?' समूचा वातावरण औत्सुक्य, गांभीर्य, प्रसन्नता ऐसे संमिश्र भावों से भरा हुआ था ।

इधर सुकाभाऊ की झोंपडी में विनोबाजी थे । एक-एक से बातें हो रही थीं ।

ही वाक्स फार दोज हू कैन नाट वाक
ही टाक्स फार दोज हू कैन नाट टाक

– वह चलता है उनके लिए जो चल नहीं सकते
वह बोलता है उनके लिए जो बोल नहीं सकते

ऐसी अवस्था के कारण यह बातचीत चल रही थी। कइयों के

कई खानगी प्रश्न थे, जिनको हल करने में उन्हें विनोबाजी का मार्गदर्शन चाहिए था। इस धूमधाम में भी इस काम से उन्हें कहां से छुटकारा मिलनेवाला था!

सभा का समय होने लगा वैसे विनोबाजी झोंपडी के बाहर आये और तालिमी संघ की ओर गये। लोगों की भीड उनके पीछे चलने लगी। वहां चबूतरे पर थोडी देर बैठे, लोगों से बातचीत की और फिर उठे। तुरंत श्री आशादेवी (आर्यनायकम्) आगे आयीं और उन्होंने विनोबाजी को सूतमाला पहनायी। श्री जानकीबाई (बजाज) बीमार थीं। उनके कुछ खानगी प्रश्न थे। चंद मिनट उनकी कुटी में उनसे बातें हुईं और विनोबाजी बापू की झोंपडी की ओर बढे। बा झोंपडी के बाहर ही खडी थीं। विनोबाजी ने उन्हें प्रणाम किया। हंसते हुए बा ने पूछा – 'केम चाल्या?' बापूजी झोंपडी में नहीं थे। राजकुमारी अमृतकौर अंदर थीं। विनोबाजी की आवाज सुनते ही वे बाहर आयीं और दूसरी सूत की माला उन्होंने पहनायी। इतने में बापूजी वहां आ पहुंचे। विनोबाजी ने बापूजी को झुक कर प्रणाम किया। बापू ने अपने हथकते सूत की माला उन्हें पहनायी। माला कुछ छोटी थी, सिर से नीचे नहीं जा रही थी। ज्ञानी को बांध लेगा ऐसा कोई भी बंधन इस दुनिया में नहीं है। लेकिन बापू के प्रयत्नों से वह माला विनोबाजी के गले में विराजमान हो गयी। 'जासो' बापू की आज्ञा हुई।

सभास्थान बहुत दूर नहीं था। पर वहां तक सूतमालाओं का ढेर हो गया। विनोबाजी मंच तक पहुंचे उससे पहले ही चारों ओर से दौडते हुए लोग वहां पहुंच गये थे। मंच पर दोनों ओर बडे-बडे तिरंगी झंडे लगाये हुए थे, जिन्होंने सूर्य के ताप को रोक लिया था। जैसे भीष्माचार्य का सिरहाना बाणों का बना था, वैसे

विनोबाजी के सिर पर इन झंडों ने छाया की थी। नजदीक ही एक ओर महादेवभाई (देसाई) रिपोर्ट लिख लेने तैयार बैठे थे। उनके पास पंडित सुंदरलालजी बैठे थे। कस्तूरबा भी थीं। ठीक, जाहिर किये हुए समय पर भाषण प्रारंभ हुआ। गंगा के प्रवाह के समान एक के बाद एक वाक्य सरसर बहने लगे और श्रोताओं की चित्तवृत्ति केवल तदाकार हो कर रह गयी।

"...बचपन में पुराण की कथा पढी थी कि प्रह्लाद को रामनाम लेने की मनाही की गयी थी। जब मैंने यह पढा तब आश्चर्य लगा था कि इतनी निरुपद्रवी बात को क्यों मना किया होगा? क्या यह सच होगा? लेकिन आज उसका प्रत्यक्ष अनुभव ही आ रहा है। मनुष्य ने मनुष्य को मारना नहीं चाहिए, इतनी सादी, निरुपद्रवी बात कहने के लिए आज प्रतिबंध है। जो एक-दूसरे के शत्रु हैं, जो शस्त्रास्त्र से सज्ज हैं, वे एक-दूसरे को मार रहे हैं, ऐसा भी नहीं है। आज तो जो निःशस्त्र हैं; जिनका किसी से वैर नहीं है, जिन मासूम बच्चों के होंठों पर का दूध भी अभी सूखा नहीं है, जो बहनें अपने परिवार की सेवा करने के अलावा और कुछ जानती नहीं हैं – राजनीति तो दूर ही रही, उन सब पर बम बरसाये जा रहे हैं। तो क्या इसको लडाई कहेंगे? रात देखते नहीं, दिन देखते नहीं, बमवारी चली ही है। क्या जर्मनी की इमारतों का और इंग्लैंड की इमारतों का भी आपस में वैर है? जर्मनी के पेड और इंग्लैंड के पेड, ये भी लडाई में शामिल हैं? सभी का नाश हो रहा है। लेकिन इतनी सादी-सी बात कहना भी आज अपराध माना जाता है। असल में यह बात कहना, समझाना धर्म है कर्तव्य है। मैं यह बात कहते हुए घूमनेवाला हूं। आप लोग क्या करेंगे? सत्याग्रह तो वही करेगा, जिसको महात्माजी की आज्ञा है। परंतु आप लोगों को चाहिए कि आप लडाई को किसी प्रकार की सहायता न दें। इस समय आपको अपने गांव को मजबूत करना चाहिए। रचनात्मक काम में लग जाना चाहिए।"

भाषण आधा घंटा ही हुआ, लेकिन श्रोताओं के हृदय पर अमिट छाप छोड गया।

सभा के बाद विनोबाजी तालीमी संघ के मैदान में आये। थोडी देर अगले कार्यक्रम के बारे में चर्चा हुई। रात को वर्धा के गांधी चौक में सभा का आयोजन करने का तय रहा। विनोबाजी मैदान में खुले वदन घूमने लगे। धूप में घूमने का यह उनका रोज का क्रम था। इस सूर्योपासना का गहरा असर उनके शरीर पर पडा था। सूर्यप्रकाश के असर से पूरा शरीर मांजे हुए तांबे के चमकीले टुकडे के समान तेजस्वी दीख रहा था।

थोडी ही देर में मोटरकार आ पहुंची और विनोबाजी नालवाडी जाने निकले। मोघेजी, शिवाजी वगैरह भी उनके साथ कार में बैठ गये। रास्ते में मोघेजी ने पूछा – "इतनी सारी सूत की मालाएं मिली हैं, उनका क्या करना है?"

"पिछले समय जो गुंडियां मिली थीं, उनका कपडा ही बनाया है ना?" – विनोबाजी

"लेकिन इस समय इन गुंडियों का नीलाम करें।"

"मुझे यह पद्धति पसंद नहीं है। यह ठीक है कि बापू इस प्रकार नीलाम कराते हैं। उसमें उनकी दृष्टि जनसेवा की है। परंतु मुझे वह विचार जंचता नहीं। मुझे गणित प्रिय है, लेकिन यह हिसाब जमता नहीं।"

गाडी नालवाडी आ पहुंची। यहां सर्वत्र छोटी-छोटी झोंपडियां खडी थीं। यह विनोबाजी की मंडली का केंद्र! काम का व्याप शेगांव की अपेक्षा कम नहीं था, प्रचंड ही था। रामदासभाई की गोशाला, वालूंजकरजी का चर्मालय, भाऊसाहेब का सरंजाम

कार्यालय, बुनाई-गृह, यह सब तो था ही, साथ ही अध्ययन-अध्यापन, जीवन के तरह-तरह के प्रयोग, वर्धा-तहसील ग्रामसेवा-योजना भी थे।

विनोबाजी अपनी झोंपडी में गये। दत्तू दास्ताने एक अंग्रेजी रिपोर्ट उन्हें पढ कर सुनाने लगा। महादेवभाई वाइसराय के सेक्रेटरी से मिलने दिल्ली गये थे, उस बातचीत की यह रिपोर्ट थी। महादेवभाई ने विशेषरूप से विनोबाजी के पास उसकी प्रतिलिपि भेजी थी। संवाद बहुत मार्मिक था, पर सेक्रेटरी के कहने का सार यही था कि गांधीजी युद्ध-विरोध की, खास कर सत्याग्रह की नीति न अपनायें। उसमें सेक्रेटरी ने यह भी कहा था कि यद्यपि गांधीजी के आंदोलन का स्वरूप अनात्याचारी है, विनोबाजी जैसा एकाध अपवाद छोड दें तो बाकी सबके भाषण ऐसे होते हैं कि उन पर प्रतिबंध न लगाना सरकार के लिए संभव नहीं होता।

शाम हुई। नालवाडी के प्रार्थनास्थान पर दरी बिछायी गयी। विनोबाजी वहीं बैठ कर सायं-आहार ले रहे थे। इतने में श्रीकृष्णदास जाजू मिलने आये। जैसे ही जाजूजी विनोबाजी के पास बैठे, बुद्धसेन अपना कैमेरा ले कर उठ खडा हो गया। उसको रोकते हुए विनोबाजी बोले – "यह शौक अच्छा नहीं। फोटो खिचवाने की बचपन से ही मुझे नफरत है। हमारे घर में हमारे दादा बडे ही व्रतकर्कश थे, लेकिन वे भी फोटो के लिए बैठ गये। पर हमारी मां बैठी नहीं। वह कहती थी कि फोटो खिचवा लेने से मनुष्य का तेज टिकता नहीं। तब से उसका वह विचार मुझे पूरी तरह से जंच गया। कहां से उसको वह विचार सूझा, मालूम नहीं।"

"आजकल सर्वत्र बहिर्मुख वातावरण है । खुद के फोटो खिंचवाते हैं, खुद ही अखबारों में भेजते हैं । चुनाव के समय तो सबकुछ और ही बिगड जाता है ।" – जाजूजी ।

"मोरोपंत ने लिखा है, **आत्मस्तुति परनिंदा मिथ्याभाषण न ये कधीं वदना ।** इससे ठीक उलटी हालत चुनाव में होती है ।" – विनोबाजी

चर्चा सत्याग्रह की ओर मुडी । शिवाजी ने पूछा – "बापू ने सभी सत्याग्रहियों को दिल्ली के रास्ते से जाने को कहा है, वह किसलिए ?"

"सबको एक दिशा उन्होंने दिखायी है । मैंने बापू से कहा कि मैं इस तहसील के कुछ गांव लूंगा और तब तक न पकडा गया तो उत्तर की तहसील में जाऊंगा; दिल्ली की ओर जाने का आशय मैंने मेरे लिए इस तरह समझ लिया है । उस पर बापू ने कहा कि तुम ठीक समझे हो ।" – विनोबाजी ।

"श्री अँमेरी ने इंग्लैंड के पार्लमेंट में आपकी प्रशंसा की है ।"
– जाजूजी ।

"फिर पकडा किसलिए था ? क्या बिना किसी कारण के ही सजा दी थी ?" – विनोबाजी ।

"पार्लमेंट में चर्चा छिडी थी कि जवाहरलालजी को चार साल की सजा दी गयी है, वह ज्यादा है, तब अँमेरी ने आपका जिक्र किया था । आपकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि विनोबाजी को बहुत कम सजा दी है ।" – जाजूजी

"यहां का मैजिस्ट्रेट भी अच्छा दीखता है ।" – शिवाजी

"अच्छा है ही । जिस दिन केस चल रही थी उस दिन उसका चेहरा उतर गया था, मानो वही अपराधी हो ।" – विनोबाजी ।

शाम को वर्धा के गांधीचौक में सभा हुई। दो-तीन हजार लोग थे। सुबह के युद्धविरोधी मुद्दे ही अधिक विस्तार से समझाये और अंत में अत्यंत छटपटाहट से सामूहिक उपासना का विचार समझाया। आज हिंदुस्तान में सर्वसुलभ और सर्वोपयोगी उपासना कताई के अलावा दूसरी दीखती नहीं। रोज तुलसी के पौधे को पानी देने को कह कर उपासना की दृष्टि मेरी मां ने मुझे दी। खादी से स्वराज्य कैसे मिलेगा, इसमें आशंका नहीं रखनी चाहिए। निष्ठापूर्वक परिवार के हर व्यक्ति को इस उपासना में शामिल हो जाना चाहिए।

रात हो गयी। विनोबाजी निद्रासमाधि में चले गये। पर साथियों को कहां की नींद! उनके दिल में तो एक ही प्रश्न था, कल क्या विनोबाजी को गिरफ्ततार कर लेंगे?

न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति

* * *

18 जनवरी 1941

प्रात:काल की प्रार्थना समाप्त हो चुकी थी। नागझरी जाने की तैयारी हो रही थी। नागझरी वर्धा से पंद्रह मील दूर का गांव, आज सत्याग्रह वहां करने का तय था। विनोबाजी की झोंपडी में लालटेन जल रही थी। एक लकडी के तख्त पर विनोबाजी बैठे हुए थे। वल्लभस्वामी, भाऊसाहेब, पंढरीनाथ, रामेश्वरजी, शिवाजी आदि मंडली सामने बैठी थी। बातें चल रही थीं। एक नया ही विचार विनोबाजी बता रहे थे – "हर व्यक्ति अपने आधे घंटे की कताई की गति की नोट रखे और उसकी जानकारी मुख्य केंद्र को भेज दे। इस तरह गांव-गांव के लोगों की

गति की [illegible] यहां होगी तो एक मजबूत संगठन खडा होगा । याज्ञिकों का एक बडा संघ बनेगा । ऐसी हालत नहीं होनी चाहिए कि राष्ट्र में कुछ चैतन्य ही न हो ।"

इतने में मदालसाबहन आ पहुंचीं । बजाजवाडी से आयी थीं । विनोबाजी ने पूछा – 'अकेली ही आयी ?'

"जी हां, लालटेन ले कर आयी ।" – मदालसाबहन ।

"रास्ते में डर लगता है या नहीं ?" – विनोबाजी ।

"लगता है ।" – मदालसा

"चंद्रमा होता है तब कम लगता होगा ।" – विनोबाजी ।

"चांदनी के कारण प्रकाश होता है तो कम डर लगता है ।" – मदालसा ।

"और चंद्रमा का साथ भी रहता है ।" – किसी ने कहा ।

"और अंधेरी रात में तारिकाओं का साथ मिलता होगा । चंद्रमा तो बेचारा अकेला, तारिकाएं तो कितनी ही ।" – विनोबाजी ।

सब प्रसन्नता से हंस पडे । इतने में भाऊ के पाले हुए कुत्ते का पिल्ला सबके बीच आ बैठा । भाऊ ने थप्पड मार कर उसे बाहर भगाया । विनोबाजी वह सारा देख रहे थे, बोले – "एक तो अनावश्यक कुत्ते को पालने का परिग्रह करना और फिर वह परिग्रह तकलीफ देने लगा कि मारने की हिंसा करना, यह अच्छा कार्यक्रम है ।"

पुन: कताई के बारे में बातें शुरू हुईं । किसी ने कहा – लकडी की तकली का प्रयोग अभी तक अच्छी तरह से नहीं हुआ है, वह करना चाहिए ।

विनोबाजी ने कहा, "लकडी की तकली से मुझे एक अलग ही विचार सूझा । ट्राटस्की को हथौडे से मारा, यह जब मैंने पढा तब

एक बात ध्यान में आयी। जिस हथौडे से मजदूरी का काम किया जाता है, उसी हथोडे से प्रतिपक्ष को मारा, यानी वह औजार हिंसक औजार है। आपकी तकली की यह सलाई है, वह भी इस दृष्टि से घातक हो सकती है। उपासना का साधन ऐसा होना चाहिए, जिसका दुरुपयोग हो ही न सके। इस दृष्टि से लकडी की तकली का विचार जरूर होना चाहिए। वह ज्यादा स्वावलंबी भी होगी, घर में ही बनायी जा सकती है।''

अरुणोदय हो रहा था। मोटरकार विनोबाजी और साथियों को ले कर नागझरी की ओर निकल पडी। रास्ते में भी अनेक विषयों पर चर्चा चल रही थी।

''समत्व-योग शब्द में भावरूप और अभावरूप, दोनों विचार सूचित होते हैं। इस शब्द में यह बहुत बडा गुण है, जो अनासक्ति-योग में नहीं है।'' – शिवाजी।

''अनासक्ति-योग शब्द अभावरूप है। उससे यह बोध होता है कि आसक्ति नहीं चाहिए, लेकिन क्या चाहिए, इसका बोध नहीं होता। यह ठीक है कि इतनी कमी इसमें है। परंतु यह शब्द 'साधन-दर्शक' है और समत्व-योग 'साध्य-दर्शक' है। समत्व सधेगा अनासक्ति से ही। अनासक्ति-योग नाम में यह गुण है।''

– विनोबाजी

चर्चा के दौरान शिवाजी ने दूसरा एक प्रश्न पूछा –''महाभारत काल में रात को युद्ध नहीं होता था। वैसा नियम ही था; वैसा रामायण-काल में यह नियम दीखता नहीं। ऐसा क्यों ?'' उस पर विनोबाजी ने कहा – ''रामायण का युद्ध राक्षसों का था, महाभारत का वैसा नहीं था।''

नागझरी पहुंच गये। इस गांव के प्रतिष्ठित सज्जन श्री खंडेराव जाधव का, जिनका पूरे गांव पर प्रभाव था और जो विनोबाजी के काम में बहुत सहायता करते थे, पांच दिन पहले, 13 ता. को ही देहांत हुआ था। इसलिए प्रथम उनके बगीचे पर गये। वहां उनके परिवारवालों और गांववालों से बातचीत की। वापस पडाव पर आने के बाद विनोबाजी खुले आंगन में घूमने लगे। ज्ञानचर्चा तो चलती ही रहती थी। महाराष्ट्र के संत-पंचक के भजनों के चयन के बारे में अपनी दृष्टि बताते हुए कहा – "एकनाथ आदि संतों का जो और जितना दर्शन उनके मुक्त, स्वतंत्र अभंगों में होता है उतना उनके प्रबंध-ग्रंथों में नहीं होता।"

"संस्कृत साहित्य में गीता के बराबरी का दूसरा ग्रंथ कौनसा है ?" – शिवाजी।

"बराबरी के बारे में तो नहीं बोल सकते, परंतु उस दिशा में सोचते हुए योगशास्त्र का नाम ले सकते हैं। उसमें संयम का शास्त्र ही बना दिया है और दूसरा ग्रंथ है ब्रह्मविद्या का – उपनिषद। गीता अचूक शास्त्र होने पर भी उसमें कर्कशता नहीं है।"

– विनोबाजी।

"तत्त्व की दृष्टि से गीता सार्वभौम ग्रंथ है। लेकिन वह हिंदूधर्म के वातावरण का ग्रंथ है।" – शिवाजी।

"गीता में हिंदूधर्म का अध्याय दसवां है। लेकिन उस अध्याय की बातों को भगवान ने भी ज्यादा महत्त्व नहीं दिया है। उसी अध्याय में उन्होंने कहा है, अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।"

– विनोबाजी

"विष्णुसहस्रनाम की क्या विशेषता है ?" – शिवाजी।

"ईश्वर-नाम के रूप में सिद्धांत गा कर बताने की पद्धति दीखती है। 'धर्मगोप्ता' कहते ही 'यदा यदा हि धर्मस्य' का स्मरण होता है। कुछ रचना छंद के हेतु से की है, जैसे भूतभव्य भवत्प्रभुः।" – विनोबाजी।

रात को गांव के बीच खुली जगह में सभा की तैयारी की गयी थी। सभा में बडी तादाद में लोग इकट्ठा हुए थे। बहनें भी बहुत थीं। सभा की शुरुआत में स्कूल के बच्चों ने गीत गाया। नागझरी की दस-बारह संस्थाओं की ओर से सूतमालाएं पहनायी गयीं। और फिर विनोबाजी का व्याख्यान प्रारंभ हुआ। पूर्वार्ध में युद्धविरोधी विषय समझाते हुए एक नया ही विचार पेश किया गया –

"अहिंसा के योग से शत्रु को मित्र बना सकते हैं। वाल्या नाम का डकैती था। हमला करने के इरादे से उसने नारदमुनि पर हमला किया। नारद शांति से खडे थे। नारद की शांति देख कर वाल्या आश्चर्य-चकित हो गया। और अंत में नारद के उपदेश के कारण उसने अपने सारे पापकर्मों को हमेशा के लिए छोड दिया। यह कहानी तो सब लोग जानते ही हैं। सवाल यह है कि यह बात ठीक है लेकिन सभी तो नारद नहीं बन सकते। यह भी ठीक है कि हम सबके सब नारद कैसे बन सकते हैं? परंतु इसका जवाब है, सब नारद न बन सकें, तो भी चल सकता है। जर्मनी में सबके सब हिटलर नहीं हैं। हिटलर एक ही है, लेकिन उस एक हिटलर की कार्यपद्धति में सब चलते हैं। एक अनुशासन में रहते हैं। वैसे ही नारद भले ही एक ही हो – गांधी एक ही हो, अगर हम सब उनके अनुशासन में चलेंगे तो अहिंसा के द्वारा हिटलर से भी कहीं अधिक परिणाम ला सकते हैं।"

भाषण के उत्तरार्ध में खादी और अस्पृश्यता के बारे में बताया।

रात को सोते समय विनोबाजी ने कहा कि कल सुबह छः बजे तक मुझे न जगाया जाये, प्रार्थना उसके बाद करेंगे। बगीचे में मंडप के नीचे विनोबाजी सो गये। आसपास के दीये बुझाये गये। लेकिन आसमान के रत्नदीप तो टिमटिमा ही रहे थे, उन्हें कौन बुझायेगा ?

> **तेल न बाती बुझ नहिं जाती**
> **नहिं जागत नहिं सोती। नजर न आवे आतम ज्योति**

* * *

19 जनवरी 1941

बगीचे में जहां विनोबाजी सोये थे, वहीं नजदीक एक बडी टोकनी के नीचे मुरगे रखे हुए थे। यह बात कोई जानता नहीं था। प्रातः तीन बजे ही मुरगों ने ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत स्वरों में बांग देना शुरू कर दिया, इसलिए विनोबाजी छः बजे के बदले, रोज से भी कुछ जल्दी ही जग गये। प्रार्थना ठीक समय पर हुई। विनोबाजी के आसपास सोनेवाले दो-चार व्यक्ति ही प्रार्थना में शामिल थे। बाकी लोग छः बजे तक सोते रहे।

आज सोनगांव जाना था। विनोबाजी प्रातःआहार ले रहे थे। मोघेजी, गद्रेजी, शिवाजी आदि सात-आठ साथी सामने बैठे थे। शिवाजी ने पूछा, "पांच सौ साल पहले के संतों के प्रति लोगों में आदर दिखायी देता है, आधुनिक संतों के बारे में वैसा आदर दीखता नहीं। भूतकाल की ठीक कल्पना नहीं आ सकती, यही शायद इसका कारण होगा।"

"भूतकाल के संतों की ठीक कल्पना आ सकती है। जैसे रेडियो

से दूर की आवाज ठीक सुनायी देती है, वैसे भूतकाल का पूरा ख्याल आ सकता है, ग्रहण हो सकता है। जैसे आवाज सर्वत्र फैलती है और रेडियो से पकड़ी जाती है वैसे ही विचार का भी है। कोई भी विचार नष्ट नहीं होता, वह सर्वत्र भरा हुआ ही रहता है। जिसके पास ग्रहणशक्ति है, उसको प्राचीन संतों का ठीक ख्याल आ सकता है।" – विनोबाजी।

"भूतकाल की प्रत्येक कृति समझ में आ सकती है ?" – शिवाजी।

"प्रत्येक कृति समझ लेने की आवश्यकता ही क्या है ? मुख्य बात है विचार। वह समझ में आ सकता है।" – विनोबाजी।

संतों के विचारों के बारे में चर्चा चली। समर्थ रामदास स्वामी के बारे में बोलते हुए विनोबाजी ने कहा, "समर्थ ने 'गुप्त राजकारण' की बात की है। उनके गुप्त राजकारण का अर्थ मैं विधायक कार्यक्रम करता हूं। अर्थात् उनका विधायक कार्यक्रम उन्होंने उस समय जो तय किया होगा वह।"

"उसको गुप्त राजकारण कहने के पीछे क्या दृष्टि थी ?" –

– शिवाजी।

"यद्यपि विधायक कार्यक्रम स्पष्टरूप से राजनीति नहीं है, उसका राजनीति पर जितना अचूक असर होता है उतना प्रकट राजनीति का नहीं होता।" – विनोबाजी

"समर्थ की विधायक कार्यक्रम की क्या कल्पना थी उस समय ?"

– शिवाजी

"वह पूरी तरह से देखना होगा। अभी देखा नहीं है। लेकिन कुछ बातें ध्यान में आयी हैं। प्रातःकाल में जल्दी उठें, प्रातर्विधि के लिए दूर जंगल में जायें, दांत साफ करें, वस्त्र स्वच्छ धोयें,

सूर्य नमस्कार का व्यायाम करें, इत्यादि। यह हो गया आरोग्य विषयक विधायक कार्यक्रम। अब दूसरा ज्ञान-प्रचार का – अक्षर सुंदर लिखें, पोथियों का संग्रह करें, आदि। प्रौढ शिक्षा के बारे में कहा है कि यह शिक्षा कथा-कीर्तन के द्वारा दी जाये। चौथा विषय है अन्याय प्रतिकार भावना।"

सोनगांव 200 घरों का, हजार जनसंख्या का गांव है। यहां आबाजीमहाराज हो गये। कार्तिक वद्य द्वादशी और आषाढ वद्य प्रतिपदा को यहां यात्राएं लगती हैं। गांव के मध्य में दो मंदिर हैं, एक गोपालकृष्ण का और दूसरा लक्ष्मीनारायण का। इन मंदिरों में हरिजनों को प्रवेश नहीं है, इसलिए विनोबाजी वहां गये नहीं।

शाम को सत्याग्रह की सभा में एक नया विचार बताया। साधारणतया रोज भाषण में प्रथम युद्धविरोधी विषय बताया जाता है, फिर कोई नया विषय और उसी में से विधायक कार्यक्रम के बारे में। भाषण में जितना जोर युद्धविरोधी विषय पर दिया जाता है उतना ही विधायक कार्यक्रम पर दिया जाता है। किसान युद्धप्रिय नहीं होता, आज यह नया विचार समझाया।

"किसान दुनिया का पालक है। उसका युद्ध के साथ कोई संबंध नहीं है। युद्ध के लिए इंग्लैंड का रोज का खर्च 13 करोड रुपये हैं। हिंदुस्तान के रोज के भोजन खर्च से तिगुना खर्च इंग्लैंड युद्ध पर कर रहा है। इंग्लैंड की सरकार इतना पैसा कहां से लाती है? किसानों से। और इस पैसे का उपयोग किसमें करती है? निरपराध बहनों-बच्चों पर बम डालने में। अंग्रेज यानी आप पर एक संकट ही आ पडा है। उनका एक ही घोष है – हमारी मदद करो, हमारी मदद करो। किसलिए मदद? मनुष्यमारी के लिए? हमसे बिना पूछे ही उन्होंने हमको युद्ध में शामिल कर लिया है। जैसे किसान बैल से बिना पूछे उसे

हल में जोत देता है। अंग्रेजों ने हमको बैल बना दिया है। हमको, आपको चाहिए कि यह बात हम स्पष्टरूप से बता दें कि इस युद्ध के प्रति हमारा कोई कर्तव्य नहीं है। हम चुप बैठेंगे तो हम हमारा कर्तव्य पूरा नहीं करेंगे। किसान कभी लडाई नहीं चाहता। लडाई को तो राजनीतिज्ञ लाते हैं और किसानों को सिपाही बना देते हैं। पूंजीपति लडाई को चाहते हैं। किसान नहीं चाहता, उसको तो अपना घर-परिवार प्रिय होता है। इसलिए हम युद्ध की मदद नहीं करेंगे। लोग फौज में जाते हैं। क्यों? क्योंकि वहां पैसा ज्यादा मिलता है। लेकिन ऐसा भयानक काम कर के पैसा प्राप्त करेंगे? जरूरत क्या है उसकी? आपका गांव तो स्वावलंबी बन सकता है। प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष कपडे का चार रुपया खर्च मानें तो आपके गांव से हर साल 4000 रुपया बाहर जा रहा है। आप सूत कातना सीख लेंगे तो इतना पैसा गांव में ही रहेगा।"

दिन समाप्त हुआ। अद्वैत का वातावरण शुरू हो गया। दिन-भर आनंद का वातावरण था। जैसे भगवान के पास भगवान और भक्त, दोनों होते हैं तो कुछ समय ज्ञान और कुछ समय भक्ति चलती है, वैसे आजकल रोज ही रात को अद्वैत और दिन भर आनंद का वातावरण होता है।

* * *

20 जनवरी 1941

सुबह उठ कर नये गांव जाना, दिन भर ज्ञान-चर्चा, कताई-उपासना, गांव का निरीक्षण आदि कार्यक्रम और रात को आमसभा, ऐसा दिनक्रम बन गया था। विनोबाजी के पास साथियों का जमघट बना ही रहता था। जब तक विनोबाजी बाहर हैं तब तक उनकी संगति में रहने हेतु रोज नये-नये लोग आते और पुरानों में से किसी को विनोबाजी की ओर से वापस जाने की सूचना मिलती। एक चलती-फिरती यात्रा ही थी वह!

आज आगरगांव जा रहे थे। रास्ते में हृदय-परिवर्तन पर चर्चा

चली थी, तब विनोबाजी ने कहा, "पहली बात ध्यान में रखने की यह है कि जब हम हृदय-परिवर्तन कहते हैं तब पहले खुद अपना और अपने लोगों का परिवर्तन होना चाहिए। उसके बिना प्रतिपक्ष का परिवर्तन होगा नहीं। अपने लोगों का परिवर्तन अगर हो जाता है तो प्रतिपक्ष का होगा ही। पिछले बीस सालों में हमारा और प्रतिपक्ष का जो परिवर्तन हुआ है, उस पर से इसकी प्रतीति होती है।"

शाम की सभा में बताया – "योरप में लडाइयां सतत चलती ही रहती हैं। 25 साल पहले इंग्लैंड ने जर्मनी का पूरा नाश कर डाला था। अब जर्मनी बदला लेने की जिद से लड रहा है। ऐसे लडाइयां बढ ही रही हैं। अंग्रेज लोग हर साल यहां से पैसा ले जाते हैं। पैसा ही नहीं, हड्डियां भी ले जाते हैं। उससे हिंदुस्तान की जमीन का कस घट रहा है। इस सारी परिस्थिति के कारण हमारी आयु भी घटती जा रही है। अंग्रेज लडाई में हमसे मदद मांग रहे हैं। लेकिन लडाई में किसी का भी कल्याण नहीं है। और फायदा भी नहीं है। परंतु यह बात सरकार कहने नहीं देती, बाधा डालती है। इसलिए यह सत्याग्रह चल रहा है। हम इस लडाई में मदद नहीं देंगे। परंतु ऐसे समय पर हमको क्या करना है? मजबूत बनना है। गांव-गांव को मजबूत बनाना होगा। आप अपने गांव में खादी का उत्पादन बढाइए। इस साल इस गांव में कम से कम 100 खादीधारी बनें। खेती का धंधा छोड कर लडाई में शरीक होना या इस पवित्र धंधे से कमाया हुआ पैसा मनुष्यमारी के लिए देना, दोनों से दूर रहें।"

नागझरी के लोग भी सभा के लिए आये थे। दूसरे दिन लोणी जाना था। लोणी में महानुभावी लोगों की संख्या ज्यादा है। नागझरी के लोगों ने कहा, लोणी में बहुत कठिन जायेगा, आपको

देखते ही लोग घर ताला मार कर खेत में चले जायेंगे, वहां कभी कोई सभा नहीं होती। यह सुन कर विनोबाजी ने कहा, "फिर तो वहां जाना ही होगा। आज तक वहां कोई सभा नहीं हुई है, तो वहां सभा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है। भोजन आदि प्रबंध की चिंता मत करो। अलावा, वहां महानुभावों का साहित्य देखने को मिल सकता है, यह भी एक लाभ है।"

इस बोध के साथ आगरगांव का दिन समाप्त हुआ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति

* * *

21, 22 जनवरी 1941

लोणी के रास्ते पर महानुभावी संप्रदाय के बारे में ही चर्चा चल रही थी। शिवाजी ने कहा – "महानुभाव संप्रदाय में कृष्ण की और दत्त की उपासना है। वे गीता को भी मानते हैं।"

"महानुभावों का दत्त त्रिमूर्ति दत्त नहीं है। वह भागवत का अवधूत है। 'महानुभाव' भागवत संप्रदाय ही है। गीता-भागवत को माननेवाला संप्रदाय है।" – विनोबाजी।

"कुराण शरीफ में तत्त्वज्ञान-दर्शन की चर्चा है ?" – मोघेजी।

"कुराण शरीफ में सगुण निराकार की भक्ति है। साकार की भक्ति हो नहीं सकती। साकार की सेवा, सगुण की भक्ति।"
– विनोबाजी।

"निर्गुण निराकार का क्या ?" – शिवाजी

"निर्गुण निराकार का परिचय, अनुभव।" – विनोबाजी।

"फिर ध्यान किसका ?" – शिवाजी।

"सगुण साकार का।" – विनोबाजी

"कर्मयोग और सेवा में क्या फरक है ?" – शिवाजी।

"सेवा में निष्कामता आयेगी तब वह कर्मयोग होगा। सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की; कारण, व्यक्ति साकार, समाज सगुण निराकार। बापू कहते हैं न कि जीवित मनुष्य की भक्ति हो नहीं सकती !" – विनोबाजी।

"जीवित मनुष्य की भक्ति करेंगे तो क्या होगा ?" – मोघेजी

"वह आसक्ति साबित होगी।" – विनोबाजी।

गांव में पहुंचते ही प्रथम वहां के एक मालगुजार (जमीनदार) के घर ले गये। मालगुजार गांव में रहते नहीं थे, उनके दिवाणजी थे। ओसारे पर एक दरी बिछायी हुई थी। विनोबाजी वहां बैठ गये। दिवाणजी पहले से ही मुंह लटकाये हुए थे, इसलिए 'आइए, बैठिए' आदि स्वागत की गुंजाइश ही नहीं थी। विनोबाजी स्वयं दिवाणजी से बातें करने लगे – "कहिए, दिवाणजी, क्या इस गांव में सभी लोग महानुभावी हैं ?"

"जी नहीं, दूसरे लोग भी हैं।"

"फिर इसको महानुभावों का गांव क्यों कहते हैं ?"

"क्योंकि प्रमुख लोग उस संप्रदाय के हैं ?"

"गांव में मांसाहारी लोग कितने होंगे ?"

"लगभग नहीं के बराबर।"

"महानुभावों के अहिंसा-सिद्धांत पर व्याख्यान देने मैं आया हूं। सभा का प्रबंध हो सकेगा ना, दिवाणजी ?"

"गांव के लोग जो करेंगे।"

"डर-वर तो नहीं है ना मन में।"

"डर ? डर किसलिए ? किस बात को ?"

"हमारे लोगों को आपके गांव में आना तो खिलायेंगे ना ?"

दिवाणजी ने कोई जवाब नहीं दिया । विनोबाजी ने कहा – "न हो सके भोजन का प्रबंध तो हरज नहीं, एक दिन उपवास कर लेंगे । लेकिन सभा का तयशुदा कार्यक्रम तो होगा ही ।"

गांववाले, कुछ चंद लोग आ ही गये थे, उनसे बातें हुई । हरिजनों की संख्या, साक्षरता, जमीन का रकबा, कर्जा आदि जानकारी प्राप्त कर ली । आये हुए लोगों में एक शिक्षक थे । मालूम हुआ कि उनके घर में महानुभावी साहित्य का अच्छा संग्रह है । गांव की परिक्रमा कर विनोबाजी उन शिक्षक के घर साहित्य देखने गये । काफी समय पुस्तकें देखने में गया ।

दोपहर के भोजन की व्यवस्था दिवाणजी के यहां नहीं, दूसरी जगह पर थी । भोजन चल रहा था तब यजमान कहने लगे – "पुलिस अगर हमसे पूछेगी कि इन लोगों को क्यों खिलाया तो हम जवाब देंगे कि गांव में कोई आता है तो उसे खिलाना पडता है सो खिला दिया, लेकिन वे लोग हमारे यहां ठहरे नहीं हैं, दूसरी जगह ठहरे हैं ।" विनोबाजी ने कहा – "यह अच्छा है । दिवाणजी से पुलिस पूछेगी तो वे बतायेंगे कि गांव में कोई आता है और सोने के लिए जगह मांगता है तो देनी पडती है, तो दे दिया ओसारा सोने के लिए, लेकिन हमने उनको खिलाया-पिलाया नहीं ।"

दोपहर में सेवाग्राम से एक व्यक्ति बापू का संदेशा ले कर आया । बापू को रोज की रोज खबर चाहिए थी । विनोबाजी ने पूरी जानकारी का पत्र दे कर उसे रवाना किया । शाम हो गयी । अभी तक गांव में सभा की डौंडी भी नहीं पिटी गयी थी, कोई प्रबंध के लिए सामने नहीं आ रहा था । आखिर चौदसभाऊ और

दगडूभाऊ ने गांव में घूम कर डौंडी पीटी। लोगों ने अपने-अपने घर के दरवाजे बंद कर लिये।

रात को आगरगांव के लोग दरियां, पेट्रोमैक्स ले कर आये। उन्होंने ही दत्त मंदिर के सामने बिछायत लगायी, तख्त रखा। नागझरी के लोग भी आ गये। लेकिन लोणी गांव के लोग नहीं आ रहे थे। इन लोगों ने गांववालों को समझाया कि बिछायत पर बैठे इसलिए कोई आपको पकड नहीं लेगा, आदि। तब धीरे-धीरे लोग इकट्ठा होने लगे। व्याख्यान थोडी देरी से ही प्रारंभ हुआ। आज पूरा व्याख्यान निर्भयता पर ही था।

"यहां मुझे सर्वत्र भय का वातावरण दिखायी दिया। बचपन में मुझे हौए का डर लगता था; तो मां ने कहा कि रामनाम लेने से हौआ, भूत सब भाग जाते हैं। तब से मेरा डर गया। फिर तो मैं बपचन में पहाडों के जंगलों में भी अकेला घूमने लगा। भय किस बात का? तो बताया गया, दरोगासाहब (पुलिस कांस्टेबल) का डर लगता है। पुलिस का डर क्यों लगना चाहिए? इंग्लैंड में तो पुलिस को मित्र माना जाता है। पुलिस सबकी मदद करती है। महानुभावों ने तो अहिंसा की बात चलायी। लेकिन जो डरेगा वह अहिंसा का क्या पालन करेगा? निर्भयता के विना अहिंसा सधेगी नहीं। आज तो ऐसा समय आया है कि निर्भयतापूर्वक हमको कहना होगा कि योरप में चल रही लडाई का हम मदद नहीं करेंगे, उस लडाई के साथ हमारा कोई संबंध नहीं है।"

आज सभा में पुलिस के लोग उपस्थित थे। इसलिए ख्याल आ गया कि सुबह तक विनोबाजी को पकड लेंगे। सभा के बाद दगडूभाऊ ने विनोबाजी का सामान तैयार कर रखा। इधर बाकी लोगों ने भी विनोबाजी को अगर पकड लेते हैं तो तुरंत वर्धा कैसे

जायें, इसकी योजना बना ली। अगरगांव के लोगों ने सामान ले जाने के लिए बैलगाडी भेजना कबूल किया। इतना सारा करने के बाद सब अपने-अपने बिस्तर पर लेट गये। परंतु कोई भी ठीक सो नहीं सका। बगल में ही गोठा था और उसमें बैल थे। उनके गले की घंटियां रात भर बजती रहीं और सुबह तीन बजे से नौकरों ने गोठा-सफाई का काम जोर शोर से शुरू कर दिया। इस कोलाहल से विनोबाजी भी जल्दी ही उठ गये। नियत समय पर प्रार्थना हुई और प्रार्थना के बाद रोज के जैसी ज्ञानचर्चा शुरू हो गयी।

थोडा समय बीता और पुलिस की गाडी वहां आ पहुंची। पुलिस अधिकारी अंदर आये और उन्होंने विनोबाजी को प्रणाम किया। विनोबाजी ने इशारे से पूछा, कैसे आना हुआ? उन्होंने कहा, "आपकी खिदमत में हाजिर हूं, आपको ले जाने आया हूं।" विनोबाजी के प्रातः-आहार का समय हो गया था, उन्होंने वह लिया। पुलिस को भी फलाहार दिया गया। पुलिस अधिकारी सिक्ख थे और बहुत आदर के साथ पेश आ रहे थे। खाना पूरा होने के बाद विनोबाजी उठे और शांति से गाडी में जा बैठे। दगडूभाऊ ने उनका सामान गाडी में रखा। विनोबाजी ने एकनाथ के भजनों की पुस्तक अपने हाथ में रखी थी, वह खोल कर पढने लगे। दूसरे ही क्षण गाडी वहां से निकल गयी।

जैसे ही पुलिस अधिकारी ने बताया था कि मैं आपको लेने आया हूं, वैसे ही बुद्धसेन बाइसिकल से पूरे वेग के साथ वर्धा की ओर चला गया और पूरे वर्धा में उसने यह खबर फैला दी। वर्धा

के रास्ते पर तुरंत इस तरह के फलक लग गये। विनोबाजी की गाडी के दर्शन के लिए जहां-तहां लोग खडे हो गये।

रात को वर्धा के गांधीचौक में बहुत बडी आमसभा हुई। बाबू राजेंद्रप्रसाद और आचार्य कृपलानी ने विनोबाजी की गिरफ्तारी का आशय विशद रूप से बताया।

जागृति के बाद सपना समाप्त होता है वैसा ही लगा। विनोबाजी की सत्संगति में बाकी सभी बातों का मानो विस्मरण ही हो गया था। उनकी कार निकल गयी और अब महसूस हुआ कि ये पांच-छः दिन कैसे बीत गये, समझ में भी नहीं आया। सारा वातावरण ऐसा आश्चर्यवत् हो गया था।

बहता पानी है नहरों में
सिंचित करने खेत धाम के,
लेकिन उनके मग में उगती घास
पा जाती जल उस प्रवाह से।
यदि इस धरती पर बसता है
एक सुजन भी
तो उल्लसित मेघ बरसाते
पानी उसकी खातिर,
लेकिन लाभ सभी को मिलता।

औवै (तमिळ संत कवयित्री) 'दक्षिण की सरस्वती' से

भाविनी

"वे दिन थे जब हर नौजवान देश की आजादी और आबादी के लिए सोचता रहता था। मैंने भी अपने शिक्षाकाल में जीवन के भव्य सपने संजोये थे। चित्त में सेवाक्षेत्र का आकर्षण लिये मैं पढ रही थी।"

धाम-नदी के जल को निहारती हुईं आनंदीबहन अपने मुलायम सफेद बालों की चमक के कारण अधिक प्रसन्न दीख रही थीं। उनकी आंखें अतीत में घूम कर आयी थीं, उनके मुख पर मधुर स्मित छा गया था। और उनके सम्मुख बैठे हम, अपनी आंखों में प्रश्नचिह्न लिये उनकी ओर ताक रहे थे। आखिर वे हमारी ओर मुडीं। मानो स्वगत बोल रही हो ऐसे मंद स्वर में बोलने लगीं –

"हमउम्र के मित्रों में चर्चाएं होती रहती थीं, भविष्य में क्या करेंगे? तब जवाब हाजिर रहता था, "फिलहाल तो अच्छी तरह पढने दो, बाद में सोचेंगे।' अचानक हाथ आया बाबा का गीता-प्रवचन। मॅट्रीक पास लडके से पूछो कि अब आगे क्या इरादा है? तो वह कहता है, 'अभी मत पूछो, अभी तो फर्स्ट ईयर में हूं।' दूसरे वर्ष फिर पूछेंगे तो कहेगा, 'पहले इंटर तो हो जाने दो, फिर देखेंगे।' यही सिलसिला चलता है। जो आगे होनेवाला है उसका क्या पहले से विचार नहीं करना चाहिए? परंतु विद्यार्थी इन सब प्रश्नों को टालता है।"

पढाई छूट गयी। जीवन में कुछ करना तो है, लेकिन क्या करें? मन में आता था आध्यात्मिक साधना करनी है। कैसे करें? मेरा

शिक्षित मन कहने लगा ध्यान ही सही मार्ग है। फिर मेरा एकांत सेवन और चिंतन शुरू हुआ। सद्ग्रंथ पढने तथा आध्यात्मिक प्रवचन सुनने का कार्यक्रम बन गया। उस समय लगता था सारे संसार पर प्रेम उमड रहा है, मन निर्विचार होने जा रहा है, शांति का अनुभव आ रहा है। अपने में मस्त थी। लेकिन दूसरों की जरा-सी बात का बोझ क्यों महसूस हो जाता है? उस मिथ्या आनंद की सतह को साफ किया गीता-प्रवचन के उस वाक्य ने –

"कोई मनुष्य गुफा में जा बैठता है, वहां उसका किसी से संपर्क नहीं होता। वह समझने लगता है कि अब मैं बिलकुल शांत-मति हो गया। गुफा छोड कर बाहर जाता है तो वहां कोई खिलाडी लडका दरवाजे की सांकल खटखटाता है तो वह भी उस योगी को सहन नहीं होता। गुफा में रह कर उसने अपने मन को इतना कमजोर बना लिया है कि जरा-सा भी धक्का उसे सहन नहीं होता। मन की ऐसी दुर्बल स्थिति अच्छी नहीं। अपने मन का स्वरूप समझने के लिए कर्म बडे काम की चीज है।"

कुछ मुस्कुराते हुए आनंदीबहन आगे बोली, "और आरंभ हुई कर्म साधना। कुछ सालों बाद देखा कि कर्मप्रवाह ने तो मेरे मन में आखात निर्माण किया, इसके अलावा तो कोई खास लाभ नहीं हुआ। मैं पछता रही थी, इतने साल नाहक बरबाद कर दिये। उसी दरम्यान बाबा मेरी मदद में दौडे आये – "कर्म का जंजाल चित्त में घुस कर क्षोभ पैदा करता है। सुख-दुःख के द्वंद्व निर्माण होते हैं। सारी शांति नष्ट हो जाती है। कर्म चित्त पर हावी हो जाता है। परंतु ऐसे कर्म में यदि विकर्म को मिला दें, तो फिर चाहे जितने कर्म करें, उनका श्रम नहीं मालूम होता। मन ध्रुव की तरह शांत, स्थिर और तेजोमय बना रहता है।"

उस समय ऐसा लगने लगा कि प्रेम-भक्तिरूपी विकर्म ही सार है। भजन, संकीर्तन, पूजा में मन को स्थिर करने की कोशिश शुरू हुई। न सामनेवाले का कुछ सोचना, न सुनना। हम तो चले मस्त फकीर बनने। किंतु देखा, मस्ती तो आ नहीं रही। आखिर बात क्या है?

पुन: बाबा से इशारा मिला – "जिसका जैसा भी सीधा-सादा जीवन है, जो कुछ स्वधर्म कर्म है, सेवा-कर्म है, उसी को यज्ञमय क्यों न बना दें? फिर दूसरे यज्ञ-याग की जरूरत ही क्या है? अपने नित्य के सीधे-सादे सेवा कर्म को ही यज्ञ समझ कर करो।"

सुबह-शाम चित्त स्थिर कर के, घंटा आधा घंटा संसार को भूल जाना उत्तम विचार है। परंतु गीता को इतने से संतोष नहीं। सुबह से शाम तक की सारी क्रियाएं भगवान की पूजा के लिए होनी चाहिए, हमारे समस्त कर्म पूजा-कर्म हो जाने चाहिए। जीवन में ऐसे कई प्रसंग आने लगे जब भीतर ही भीतर मन के एक कोने मे लगता था, ये सामनेवाले बेचारे लोग व्यवहार में पडे हैं, मन के स्तर पर ही सोच रहे हैं। और उसी कोने मे धीरे-धीरे झाडू चलने लगा – "कई लोगों की ऐसी एक भ्रामक कल्पना है कि परमार्थ, गीता आदि ग्रंथ साधुओं के लिए हैं। शेष जो व्यावहारिक लोग हैं उनके विचार अलग, आचार अलग। इस कल्पना ने साधु-संत और व्यावहारिक लोग ऐसी अलग-अलग जातियां बना दी हैं। कितने ही भोले संसारी जीव सेवा कर के तर गये होंगे और मैं मैं करनेवाले पंडित तथा ज्ञानी कोने में ही पडे रहे होंगे। सवाल भावना का है।... सचमुच संसार में कोई दुष्ट है भी या नहीं इसका निर्णय आखिर कौन करे? देखो, सृष्टि

तो आईना है । तुम जैसे होगे, वैसा ही सामने की सृष्टि में तुम्हारा प्रतिबिंब दिखायी देगा ।"

'तूफानी सागर के भीषण झंझावात में मेरी जीवन-नौका को ठीक मार्ग मिल गया । लेकिन अब क्या ? शक्ति इन तूफानों से झगडने में ही खतम हो गयी । क्या रास्ते पर मार्गक्रमण करने के बजाय दीवारों से टकराने में ही समय खतम हुआ ? मन में कालिमा फैल गयी थी उसका प्रकाश में परिवर्तन हुआ –

"जो मनुष्य कल्याण मार्ग पर चलता है, उसका श्रम जरा भी व्यर्थ नहीं जाता । जो कुछ अपूर्व है, वह अंत में पूरा हो कर रहेगा । जैसे नींद से उठ कर फिर हम अपना काम प्रारंभ कर देते हैं, वैसे ही मरण के बाद भी पहले की यह सारी साधना हमारे काम आ जायेगी ।"

"तो समझ लो बच्चो, मुझ से जो कुछ सेवा या साधना हुई उसमें मेरा कुछ नहीं है । बाबा की गीता-प्रवचन मेरे पास न रहती तो मैं कहां होती क्या मालूम ?" आनंदीबहन अपना कथन समाप्त करने जा रही थीं, "हजारों कर्म करते हुए भी रत्तीभर क्षोभ-तरंग अपने मानस-सरोवर में नहीं उठने देने की खूबी सचमुच संतों के गांव गये बिना समझ में नहीं आ सकती ।"

और सच्चा भाग्य तो तब खुला जब बाबा के प्रत्यक्ष सान्निध्य का लाभ मिला, उनके गीतामय जीवन को नजदीक से देखा । मेरे जैसे साधना के नाम से भूले भटके अनेकों को राह दिखानेवाले ये नाखुदा ही पूजनीय है ।

नमो परमऋषिभ्यः

नमः परमऋषिभ्यः

तुज सगुण म्हणों की निर्गुण रे . . .

शीला

ज्ञानदेवमहाराज को एकबार दुविधा हुई, "प्रभो ! तुझे सगुण कहूं कि निर्गुण ? क्योंकि अनुभव तो ऐसा आ रहा है, सगुण-निर्गुण एक गोविंदु रे . . . सगुण-निर्गुण सब तुम्हीं हो !" ऐसी ही मीठी दुविधा से आज हृदय भर आया है, और वह पूछ बैठता है, आपको क्या कहूं विनोबा ! पूर्ण कहूं या शून्य ? आपका ही सूत्र है, आंतून शून्य, बाहेरून पूर्ण । बाहर से पूर्ण समझो और अंतर से शून्य अनुभव करो । और आपका जीवन प्रत्यक्ष मानो उसी का ही भाष्य ! भीतर से व्यक्तित्व का शून्याकार और बाहर से सामूहिकता का पूर्णाकार यानी विनोबा !"

वेद से ले कर विनोबा तक अध्यात्म-विकास का एक सुदीर्घ कालखंड जिसमें अध्यात्म-शास्त्र समाज-मानस के संदर्भ में, उसके परिप्रेक्ष्य में उत्क्रांत होते गया । अगरचे महापुरुष स्वयं तो आत्मज्ञान में लीन रहे परंतु जब सामाजिक संदर्भ आया तो समाज की मनोरचना के अनुसार उन्होंने अध्यात्म के शुद्ध सत्त्व को श्रेयानुकूल मनोवृत्तियों की मधुरिमा से लपेट कर धर्म के रूप में समाज के सामने रखा । उदाहरण के तौर पर गीता में भगवान ने कहा, 'धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि' – धर्म से अविरुद्ध काम मैं हू । अब, आत्मज्ञान में काम कहां ? यह करुणाप्रेरित धर्म-वचन है । लेकिन नतीजा यह आया कि लोकमानस शुगरकोटेड कुनैन की भांति धर्म के ऊपर के मनोभावनाओं के मधुरस को चूसता रहा और अध्यात्म का शुद्ध सत्त्व वैसा ही अस्पृष्ट रह गया । इसी लिए तो अद्वैत के वेदांत का घोष जिस भारतभूमि के गगन-मंडल में सदा गूंजता रहा उसी भूमि में संकुल भेदाभेदों की धूम मची है !

विनोबा ने अध्यात्म की संशोधन-प्रक्रिया में एक आमूल क्रांति की । उन्होंने उसे सामूहिकता का अभिनव संदर्भ दिया । जो सामूहिक, वही साधना उसी प्रकार उन्होंने कहा, जो सामूहिक है वही जीवन है । व्यक्तिगत जीवन

यह तो वदतोव्याघात है। जीवन तो एक और अखंड है। टुकडे करनेवाला अगर कोई है तो वह मनुष्य का मन है। विनोबा ने ऐलान किया कि "मन आज आउटडेटेड है। अब विज्ञानं ब्रह्म का जमाना आया है। मानव-समाज को मन से ऊपर उठना ही होगा। विज्ञान आज तकाजा कर रहा है।" और सामूहिक रूप से मन से ऊपर उठने की प्रक्रिया की खोज में उन्हें जयजगत् का मंत्र-दर्शन हुआ। इस नवयुगीन मंत्र ने धर्म को एक व्यापक आत्मौपम्य का अधिष्ठान दिया। भूदान-ग्रामदान आंदोलन उस धर्मचक्र-परिवर्तन का माध्यम है।

सर्वाश्लेषी, सर्वापेक्षी सहानुभूति यह सामूहिकता का मर्म है। सामूहिकता यह कोई बनी बनायी जीवनप्रणाली नहीं है, यह तो एक स्वस्थ, निर्भय जीवन-दृष्टि है, एक भावना है। उस आधारभूत तंतु से पिरोया व्यक्ति का जीवन-पुष्प स्वयं को और साथ-साथ समूची पुष्पमाला को संजीवन देता है। यही संजीवनशक्ति विनोबा का शील है। इस वास्ते उनके स्फूर्तिमय स्पर्श ने जो कुछ छुआ, उससे रचनात्मक आयाम खुल गये, उनकी मंगल-दृष्टि जहां कहीं पडी, वहां सत्यपूत समन्वय की षोडश-कला खिल उठी और रघुवीर का बाण बन कर उनसे जो भी कुछ संधान हुआ उससे लोगों के टूटे दिल जुड गये। यह अभेदरचना-कौशल्य ही तो साम्ययोग है!

गाढ निद्रा में प्रतिदिन समग्र भूतचेतना परमात्म-चैतन्य में डूब जाती है। परमात्मा का यह आशीर्वाद है। उसे जीवन की जागृति में सिद्ध करना है, सामूहिकरूप से अभेद-साधना कर के। इसके लिए सर्वोदयीन अहिंसक समाजरचना का सामुदायिक संकल्प हुआ। उस प्रजासूययज्ञ का अश्व बन कर विनोबा ने आसेतुहिमाचल परिभ्रमण किया। लाखों लोगों ने उसमें अपना हविर्भाग दिया। विराट समाजपुरुष मानो जाग उठा। परंतु विनोबा कहीं एक ठौर पर कहां रुकनेवाले थे? उन्होंने तो आज तक साधकगण ने जिसे मनुष्य की आत्यंतिकरूप से व्यक्तिगत इस्टेट जाहिर किया था, समाधि की उस परिकल्पना को भेद कर के एक विराट उडान लगायी "समाधि भी सामूहिक हो।" उन्होंने कहा, "जो समाधि रामकृष्ण परमहंस को मिली थी उस समाधि को हम सामाजिक बनाना चाहते हैं, सबको बांटना चाहते हैं। समाधि

में अनुभव आता है कि सारे भेद मिथ्या हैं, सबदूर एक ही आत्मा विलस रहा है। किंतु यह अनुभव आज किसी एक को नहीं सबको आना है। यह है सामूहिक समाधि। समाधि का अर्थ है, समत्वयुक्त चित्त। जिसमें विकार का स्पर्श नहीं, अहंता-ममता नहीं, संकुचित अभिमान नहीं है। उस प्रकार के, मनोमय भूमिका से ऊपर उठे हुए विज्ञानमय चित्त का नाम है, समाधि। पूरा समाज ऐसी समाधि प्राप्त करे या सब नाश हो जाये – ये दो ही विकल्प आज विज्ञान ने मनुष्य के सामने रखे हैं।"

सन 1916 में 'अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा' का अलख जगाये गृहत्याग किया। उस एकांत, व्यक्तिगत प्रेरणा के समय भी उन्होंने केवल अपना ही नहीं सोचा। सुहृद्-मित्रों को निमंत्रित कर के सामूहिक जीवनयज्ञ का श्रीगणेश किया। और तब का जो साथ हुआ वह मृत्युपर्यंत रहा। बल्कि कहना चाहिए कि मृत्यु के बाद भी वह टिकनेवाला सिद्ध हुआ। पहाड से फूटनेवाली स्रोतस्विनी मार्ग में जैसे अनेक धाराओं के आ मिलने से पुष्ट होती जाती है वैसे उनकी सामूहिक-साधना अनेकों की जीवन-साधना के प्रवाहों से परिपुष्ट होती हुई सीमाएं खो बैठी। अंत में, ब्रह्मजिज्ञासा का व्यक्तिगत संकल्प झड गया। जीवन समूहमय बन गया। वे कहते थे, 'सद्गति हो, दुर्गति हो, कुछ भी हो; मृत्यु के पश्चात् साथियों का साथ हमें मिलना चाहिए, यह बाबा की सामूहिक आकांक्षा है। उनको छोड कर अकेले ही वैकुंठ में चले जायें, यह बाबा को मंजूर नहीं।"

किंतु बात यहां पर ही समाप्त नहीं होती। सामूहिकता का पूर्णाकार अपने चरमबिंदु तक उत्कर्ष साधता गया। उसकी झांकी ब्रह्मविद्या-मंदिर में, अंतर्मंडल के साथ की उनकी गोष्ठियों में झलकती रही। एक दफा 'व्यक्तिगत मोक्ष के बाद यानी अहं-मुक्ति के बाद सामूहिक साधना का प्रारंभ होता है' इसकी चर्चा कर रहे थे। उस दौरान उन्होंने बताया, "मान लीजिए, सब लोग समूहरूपेण आगे बढ रहे हैं। और इतने में बाबा मर गया। ईश्वर के पास पहुंच गया। उसे वह कहेगा, मैं आपके पास आया हूं, आपका क्या विचार है? वह कहेगा, 'तुम्हारा क्या विचार है?' मैं बताऊंगा, बालुभाई अभी परंधाम में साधना कर रहे हैं, वहीं मुझे भेज दो; सूक्ष्मरूपेण अथवा

देहरूपेण । देहरूपेण भेजोगे तो वहां जाके उनके साथ साधना करूंगा । सूक्ष्म-रूपेण भेजोगे तो वैष्णववाडी के आसपास घूमता रहूंगा, कचडा पत्थर उठाता रहूंगा... फिर, बालुभाई के साथ जायेंगे।. . वह सामूहिक मोक्ष हो गया। अब बालुभाई और बाबा कहेंगे, ये जो दस-पांच हैं इनके साथ जाना अच्छा ! तो जब तक इतना सारा समूह एक हो कर भगवान के दरबार में नहीं पहुंचता तब तक वह चाहेगा कि उसी समाज के साथ एकरूप रहूं।

तात्पर्य, जीवन्मुक्ति तो प्राप्त हो गयी आपको, तत्पश्चात् सामूहिक साधना का आरंभ हुआ। लेकिन विदेह-मुक्ति आप तब तक मान्य नहीं करेंगे जब तक आपके दूसरे साधकगण उसमें पहुंचे नहीं होंगे।"

किसी ने प्रश्न पूछा, प्रह्लाद की और आपकी, सामूहिक मुक्ति की कल्पना में क्या अंतर है ? उनका जो जवाब था, अभूतपूर्व था। अध्यात्म के इतिहास में, शायद प्रथम बार यह उद्‌गार प्रकट हुए जिससे पीडित मानवता को एक गहरा आश्वासन मिला। उन्होंने बताया, "नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षु एकः – इन दीनजनों को छोड कर मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता। – प्रह्लाद ने दीनजनों के लिए मुक्ति छोडी, मेरा विचार सामूहिक साधना का है। इसका मतलब यह होता है कि सब विश्व का उद्धार होगा, उसके साथ ही हमारा उद्धार होगा। बहुत विशाल कल्पना है। परंतु प्रह्लाद की जो योग्यता है वह हम लोगों में है नहीं। लेकिन कामना हमारी ऊंची है। यह जो प्रेरणा है वह युग-प्रेरणा है। इसलिए इसमें अनेक लोगों का सहयोग होगा। यह वासना सायमलटेनियसली, एक साथ अनेक लोगों में उत्पन्न होगी। यह हम पर निर्भर नहीं कि हम प्रचार करें तब होगा। जिस युग-प्रेरणा ने हमको धक्का दिया, वह औरों को भी धक्का देगी। इस तरह युग-प्रेरणा से कार्य होगा।"

यहां सामूहिक पूर्णाकार स्वतः सिद्ध हुआ। शून्य का निर्देश करने के लिए भी परिपूर्ण गोल दिखाना पडता है। शून्य यानी ही पूर्ण। उसके दोनों छोरों को मिलाया कि शून्य ही पूर्ण बनता है। यह शून्य-शक्ति विनोबा के सामूहिक पूर्णाकार का अधिष्ठान है।

'मार्गेगमनस्थ लोपी' – यह उनकी आकांक्षा। वे हमेशा कहते कि बापू के जाने के बाद परिस्थिति ऐसी जटिल नहीं होती और बाहर निकलने की मुझसे अपेक्षा नहीं होती तो मैं जीवनभर परंधाम में खेती करता हुआ अपने प्रयोगों में डूबा रहता। शायद बाबा को किसी ने जाना ही नहीं होता!

सन् '39 में पवनार में उनका शून्य चित्त का प्रयोग चल रहा था। तब किसी पत्र में वे लिखते हैं, "यहां भी मैं कुछ-न-कुछ करता रहता हूं। कर्मरति जब तक कायम है तब तक गांधीपंथी लोगों की तकरार चलेगी नहीं, इतना पक्का है। यद्यपि मैं निवृत्तिमार्गी था, हूं और रहूंगा, यह मुझे कबूल करना चाहिए।"

परंतु उनकी इस निवृत्ति में एक विलक्षण क्रांति-प्रतिभा थी, जिसकी वजह से जीवन के प्रत्येक प्रस्तुत अवसर को भेद कर के, उसके गर्भ में निहित निरुपाधिक सत्य को वे तत्क्षण ग्रहण कर लेते। इसलिए ध्यानस्थ आत्म-चिंतन हो, या परंधाम में कंकड चुनने का साधारण काम हो या भूदान-ग्रामदान का विराट यज्ञ-कार्य, उनका चित्त समानरूप से निरुपाधिक रहता। ईश्वर-दर्शन के वास्ते उनको समाज से दूर किसी एकांत गुफा में बैठने की आवश्यकता लगी नहीं। बल्कि जो अनुभव तुकाराममहाराज को आया वही उनको भी आया-:

लक्षूनियां योगी पाहाती आभास
तो दिसे आम्हांस दृष्टीपुढें ।

– विश्व को टाल कर समाधि में योगी जिस परमतत्त्व का केवल आभास पाता है, वह हमारी आंखों के सामने साक्षात् है! क्योंकि हमने विश्व के साथ ही उस विश्वेश्वर को आत्मसात् कर लिया है!

उनके शब्द के परिशीलन का कुछ मौका मिला है। उस शब्द में जो प्रकाश है, उसका स्रोत उनकी शून्यशक्ति में पाया। और यह बात उन्होंने स्वयं भी 'अभंगव्रत' के निवेदन में अपने ढंग से व्यक्त की है:

प्रेरणा परमात्म्याची महात्म्याची प्रसन्नता
वाणी संत-कृपेची ही विन्या ची कृति-शून्यता ।

– इस प्रकाशन के मूल में परमात्मा की प्रेरणा और बाबा का प्रसन्न आशीर्वाद है। शब्द मुझे संतों से मिले और शेष विन्या की कृति-शून्यता! – इस कृति-शून्यता ने ही उनको किसी स्वतंत्र ग्रंथ-रचना के उपद्व्याप में लगने नहीं दिया। गीताई, गीता-प्रवचन, ज्ञानदेव-चिंतनिका, उपनिषदों का अध्ययन, ईशावास्य वृत्ति इत्यादि सबका सब प्रकाशन पूर्वाचार्यों के ग्रंथों के भाष्य के रूप में हुआ। बाकी वे स्वयं तो 'शाब्दे परे च निष्णातः' थे। परंतु इसी लिए वे शब्द की महिमा भी जानते थे। प्राचीन शब्द अनेक संत-ऋषिमुनियों के ध्यान-चिंतनादि के सहस्रवधि पुट चढने से वीर्यवंत बने हुए होते हैं, उनमें नवनवोन्मेषशालीन विभिन्न अर्थों को प्रसव करने की क्षमता होती है, इसलिए उसी को ले कर वे आगे बढे। किसी कृति का कर्तृत्व अपने पर लिया नहीं। अकर्तृत्व की यह कला, लगता है उन्होंने ज्ञानदेव माउली के सान्निध्य में पायी।

ज्ञानदेवो म्हणें अविनाश जोडलें
आणूनि ठेविलें गुरुमखीं।

– ज्ञानदेव को जो परमात्म-अनुभव आया वह उन्होंने गुरुमुख से प्राप्त शब्दों में रख दिया। उसी प्रकार विनोबा ने भी अपना सारा आत्मानुभव छंदोमय ढंग से संत-वाणी में उंडेल दिया और छुट्टी पायी।

सन् '71 की बात है। एक दिन शाम की प्रार्थना के पहले मैं बाबा की कुटि में सहज बैठी थी। कुटि में ही बाबा चक्कर लगा रहे थे। एकाएक मेरी ओर देख कर बोले, "देखो, बाबा अगर दिन के सौ पन्नों का चिंतन करता है तो दुनिया को मुश्किल से आधा पन्ना मिलता होगा।" और वे मीठा-मीठा हंसने लगे। मैं जडमति उन साढे निन्यानवे पन्नों के सोच में डूबी कि क्या केवल व्यर्थ शून्य में जाने के लिए वह चिंतन हुआ? लेकिन धीरे...धीरे समझ में आया कि नहीं, वह सारा चिंतन शून्य में कायम है। बाबा अपनी शून्यशक्ति से हम जैसों को उतनी बुलंदी पर उडान भरने की प्रेरणा देते रहेंगे। वह महान शून्य समष्टि का विराट खजाना है, जिसमें ऐसे अनंत चिंतन-अचिंतन अनादिकाल से समाये हुए हैं; जो जितना शून्य हो पायेगा,

उतनी ऊंची उडान भर कर विश्व-समाज के लिए उस स्वर्ग का वैभव पृथ्वी पर उतार लायेगा।

रविबाबू का एक सुमधुर गीत है :

दूरदेशी सेई राखाल छेले
आमार बाटे बटेर छायाय   सारा बेला गेल खेले ...

– दूर.. सुदूर देश का वह राखाल-बाल मेरे आंगन के वटवृक्ष की छाया में सारा दिन खेलता रहा। गान तो उसने क्या गाया, वह वही जाने, लेकिन उसके सुर मेरे प्राणों में बज रहे। आखिर मैंने उसके निकट जा कर पूछा; तुम्हें क्या दूं ? हास्यमुख वह बोला,

"आर किछु नय, तोमार गलार मालाखानि"

– और कुछ नहीं, केवल तुम्हारे गले की माला मुझे दे दो। ... मन हिसाब करने लगा कि बदले में क्या दाम वह देगा ? और उसी सोच में शाम ढल गयी। वापस लौट कर देखती हूं तो अपनी बांसुरी धूल में छोड कर वह चला गया है !! ....

वैसा ही राखाल बाल विनोबा के रूप में, पृथ्वी के पार किसी अगम्य लोक से इस धरती पर उतर आया था। सारा जीवन वह स्वर्गीय गान गाता रहा, अपनी लुभावनी चितवन से मतवाले हृदयों को खींचता रहा। उस मस्तों की महफिल में शरीक होने का भाग्य भी मिला। लेकिन ?

श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्

– सुन कर भी कुछ पल्ले पडा नहीं। किंतु उसके सुर ने मन-प्राण को आलोडित कर दिया। अब तो वह चला गया है, अपनी बांसुरी छोड कर। कौनसी है उसकी बांसुरी ? ब्रह्मविद्या-मंदिर है वह बांसुरी। प्राणों में बज रहे सुर को अगर इस बांसुरी में भर दे सकें तो ?

तेरी चिर समाधि के पास...

ज्योति

महक उठा आंगन, चिरपरिचित एक मुस्कान
तेरी चिर समाधि के पास ।
झूम उठा मधुबन, वन के श्रद्धा और प्रेम की डाल,
आच्छन्न हुई धरती, खुला आसमान,
तेरी चिर समाधि के पास !
आज फिर ताजा हो आया वही परिमल,
हवा के मंद झोंकों के साथ ।
बरसों पहले खिली थी,
यहीं कहीं, कोई एक कली,
क्षण बीता ही था, खिल के पुष्प बन गयी ।
अपनी सार्थकता की साक्ष,
मंदिर में गयी, मस्जिद में गयी,
काबा, काशी और कैलाश में गयी ।
तरुणाई की देहलीज पर,
परिमल बिखेरती,
देश और दुनिया के घरघर में गयी ।
तेरी चिर समाधि के पास !
आज फिर ताजा हो आया वही परिमल,
हवा के मंद झोकों के साथ ।
आकाश से उतरी भगीरथ बन कर
मुदिता औ करुणा का स्रोत बहा –

भूदानी गंगा का ओघ बन कर,
वन बीहडों को पार कर,
हिमशिखर और पर्वतों को लांघ कर,
भू-हीन, हरि-जनों की संपत्ति बन कर,
बिखरी हर द्वार पर ।
तेरी चिर समाधि के पास !
आज फिर ताजा हो आया वही परिमल,
हवा के मंद झोंकों के साथ ।
वेद ऋचाओं के मधुर स्वर, उपनिषदों की छांव,
तनिक विश्रांति के क्षण,
फिर प्रयाण,
राम, कृष्ण, गौतम के कदमों पे चल कर,
अल्ला औ ईशु की उंगली पकड कर,
मीरा औ लल्ला का संगीत गा कर,
दिक्दिशाओं में भक्ति का अलख जगा कर,
तेरी चिरसमाधि के पास ।
आज फिर ताजा हो आया वही परिमल,
हवा के मंद झोंकों के साथ ।
आगे फिर सदा, चिरविश्रांति के क्षण,
सूक्ष्म में रहन, हलन औ चलन,
आंगन के कण-कण में बिखरा,
इक महान तेजस्वी जीवन ।
हवा के मंद झोकों के साथ आज फिर,
बिखर गया सब ओर वही,
पुण्य गंध परिमल,

नवसारी (गुजरात), 17 2 86

श्रीमती कालिन्दीबहन, सस्नेह नमस्कार

कभी-कभी मेरे पढने में आये विषय यों ही – नहीं, स्वाभाविक रीति से ही – मुझे 'मैत्री' की याद दिला देते हैं। और फिर क्षण का भी विलंब न करते मैं कागज-पेन ले कर आपको एकाध लेख, जैसा जमा वैसा लिख भेजता हूं। और आप भी वह छाप कर मेरा दुलार करती हैं। 'मैत्री' की चुने हुए लेखों की वार्षिक सूची में भी मेरे लेख को स्थान दिया जाता है, इन सब बातों के परिणाम-स्वरूप अनपेक्षित विषय मन में अड्डा जमाते हैं और मैं 'आय डिस्बर्डन मायसेल्फ' (अपना बोझ उतारता हूं)। लिख डालता हूं।

विनोबाजी के शब्दों में विनोबा का सहज निर्माण हुआ आत्मचरित्र भी हम पाठकों के लिए 'मैत्री' की अमूल्य भेंट है। शिवाजी भावे का लिखा उनका चरित्र भी मैंने पढ लिया है। उसमें इस पुस्तक को जोड देने से विनोबाजी के व्यक्तित्व का संपूर्ण दर्शन हुआ-सा लगता है। एक व्यक्तिगत बात लिख कर पत्र पूरा करता हूं।

इस पुस्तक में विनोबाजी के पिताजी की फोटो है। मेरा सारा जीवन, शिक्षण इत्यादि बडौदा में ही हुआ। बडौदा में मैं शियापुरा-रावपुरा विभाग में रहता था। उस समय मैं शाला-कॉलेज का विद्यार्थी ही था। मेरे घर से एकदम नजदीक देव के बाडे में, रास्ते से सट कर ऊपर की मंजिल पर विनोबाजी के पिताजी रहते थे। उस मंजिल से कभी-कभी हार्मोनियम के सुर मैं सुनता था और उनके पिताजी को हमारे घर के पास से गुजरते मैं देखता था।

एकदम वैसी ही खादी की शुभ्र टोपी, कुरता, धोती और हाथ में व्यवस्थित आकार की एक थैली। चेहरे पर हमें देख कर मुस्करान आती थी और हमारा परस्पर नमस्कार होता था। अस्तु। एक स्मरण लिख दिया।

श्रीपाद फलणीकर

सौ. विमलाताई — ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार

सादर जय जगत् — 9.8.86

'सौभाग्यवती' शब्द का उपयोग जानबूझ कर कर रहा हूं। आपका सौभाग्य अब सर्वव्यापक हुआ है।

पी. वाय्. जैसे पी. वाय. ही थे। उनके अनेक मौलिक ग्रंथों से भी उनकी महत्ता बहुत ही बडी थी। ग्रंथ, पंथ, संत इनमें वे फंसे, अटके नहीं। उन्होंने अनेक सत्पुरुषों से सद्‌गुण प्राप्त किये थे। उनका एक गुण यह था कि वे अपना मत बहुत जोर से रखते थे। फिर भी वे अनाग्रही थे। वे सत्यग्राही, सत्याग्रही थे।

वे जेल में गये थे परंतु उन्होंने जेल को जेल माना ही नहीं था। उनके लिए वह तो एक तरह से मित्रों का मेला ही था। वे जब काशी रहते थे तब मैंने उनके घर में (यानी आपके घर) भोजन किया था। सादा रुचिकर भोजन था। वे मिताहारी थे। उनको किसी भी तरह की कितनी भी तकलीफ हुई तो भी वे लोगों को अपनी तकलीफ का भान होने नहीं देते थे। स्वयं मुंह लटका कर रहना या उदास रहना उन्हें कतई पसंद नहीं था। अपने से दूसरे को कोई तकलीफ न हो ऐसी उनकी वृत्ति थी। प्रसन्न रहने से जो सेवा होती है वह अनेक प्रकार की प्रत्यक्ष सेवा से भी नहीं होती।

कभी कभार उनका गुस्सा प्रकट हुआ होगा। पर वह उनका स्थायीभाव नहीं था। उनका स्थायीभाव प्रसन्नता ही था। मैं आपके पास कभी आऊंगा तो उनके प्रसन्न चेहरे का एक फोटो आपकी संमति से ले आऊंगा।

योगशास्त्र का अध्ययन उनका गहरा तथा मौलिक था। परंतु वे योगी होने पर भी मुख्यतया प्रयोगी थे। उपभोग, उपयोग, प्रयोग इस त्रयी में से 'उपभोग' की तरफ उनका बिलकुल ही ध्यान नहीं था। अनेक तरह के प्रयोग कर के अपना समाज को ज्यादा से ज्यादा उपयोग कैसा होगा इस तरफ उनका ध्यान रहता था। आप तो उनके साथ ही रहीं। उनके बारे में आपको मैंने किसलिए लिखा ऐसा किसी को लग सकता है। परंतु मुझे जो ठीक लगा वह लिखने में क्या हर्ज है?

उनका 'अमृतानुभव रस रहस्य' ग्रंथ अपूर्व ही है। वह ग्रंथ सिर्फ बौद्धिक नहीं है, साक्षात् अनुभव से उन्होंने वह लिखा है।

सौ. विमलाताई! उत्तररामचरित आपने पढी ही है। वह एक बहुत बडा करुण महाकाव्य है। आपका भी उत्तर चरित्र चल रहा है। वह करुण न हो कर समाज के लिए करुणाभाव का होना चाहिए, और वैसा ही वह होगा ऐसा मैं मानता हूं।...

शिवाजी न. भावे
(संक्षिप्त)

प्रिय संपादक मंडल,

'मैत्री' पढने के कारण मैं आप सबके बहुत ही नजदीक हूं। आप सब बडी भाग्यशाली हैं, बाबा के आश्रम में रहने का मौका जो आपको मिला है! बाबा के दर्शन के लिए मैं एक दो बार

वहां आयी हूं । वे दिन मेरे जीवन में अनमोल थे । 'मैत्री' पढते समय मैं आप सबके साथ एकरूप हो जाती हूं ।

इस बार जुलाई को 'मैत्री' में नफानुकसान का जो हिसाब पेश किया गया है वह पढ कर बहुत दुःख हुआ । इसलिए नुकसान पूरा करने के लिए 4000 रु. की रकम मैंने भेजी है । उसे स्वीकार कर, मुझे उपकृत कीजिए । . . .

आपकी

रसीला

बंबई 21·7·86 (श्री. रसीलाबेन महेंद्रभाई जवेरी)

प्रिय उषादी,

"दूसरा मार्ग नहीं" और 'तमिल सरस्वती' आपकी ये दोनों रचनाएं खूब अच्छी लगीं । ये सब विचार हमारे हृदय पर अंकित हो जायें, उन विचारों की झलक हमारे जीवन में अनुभव हो इसी में सार्थकता है न ? अन्यथा 'मैत्री' के पाठकों की संख्या का विशेष महत्त्व नहीं है ।

. . . सहज ही याद आयी वह कविता तमिलनाडु के अमरनामा श्री भारतीयार की लिखी हुई। भारतियार यानी भारत के लाल-बाल-पाल का सुंदर समन्वय ! उनकी एक कविता का सार यह है – "इस जगत् के सारे लोग खिलाफ हो कर मेरे सामने खडे हो जायें तो भी डर नहीं, डर नहीं, डर की बात ही नहीं ।" इतनी नैतिक व आत्मिक बैठक हमारी होनी चाहिए । उन जैसे साम्यवादी अब तक न हुए, न आगे होंगे भी । कितनी आतुरता – "इस जगत् में किसी एक को भी खाना न मिले तो सारे जगत् को खतम कर देंगे !" यह उनकी अमरवाणी ! अंत में वे स्वयं भूख से मरे ।

वात्सल्यधाम मुधोल (कर्नाटक) – सेवानंद

बस, अब मैं देखूं क्या ?

गोविंदन्

देखने का तो मैंने देखा
यहां-वहां जाके, अब देखूं क्या ?

बहुत लिखा, अब लिखूं क्या ?
सब तो कहा, अब कहूं क्या ?
मन ही बना अब अमृतकुंभ
तो साकी को बुलाऊं और पिऊं क्या ?

हवा में ही खुशबू है तो
फूलों को मैं अब सूंघूं क्या ?
संग ने जब रंग मचाया
भंग डालूं अब किसी से क्या ?
मेरा हिय ही तेरा घर है
दूर रहूं या पास, भला ! क्या ?
तूने सबकुछ मुझे दिया
तुझ से अब मैं मांगूं क्या ?
मन में सारे शब्द भरे हैं
जिह्वा अब बोलेगी क्या ?
देखने का तो मैंने देखा
यहां वहां जाके
अब देखूं क्या ?

लोकगंगा के किनारे घूमनेवाले
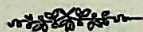
धीरेनदा का जन्मदिन : 10.9.1900

खामोश ! यात्रा जारी है...

सतीश नारायण

सतीश...सतीश...सतीश...आवाज सुन कर नींद टूट जाती है। मैं घडी की ओर नजर डालता हूं। सुबह के साढे तीन बजे हैं। धीरेनदा के निवास में लालटेन जल रही है। उनका सारा सामान समेटा जा चुका है। श्री नारायणभाई, बालेश्वरभाई और मधुसूदनभाई गाडी पर सामान लाद रहे हैं। थोडी देर बाद धीरेनदा की बैलगाडी अगली मंजिल के लिए प्रस्थान कर जाती है।

...बैलगाडी चली जा रही है और धीरेनदा की बातचीत भी जारी है। बात चल रही है रुपौली प्रखंड के एक गांव की। गांव में कम्युनिस्टों का प्रभाव है। कम्युनिस्टों का एक ऑफिस है। हंसुआ-हथौडा मार्का झंडा भी फहराता है। सुबह-शाम कीर्तन और प्रार्थना होती है। फूस की झोपडी का एक सत्संग भवन है। प्रतिदिन प्रार्थना में करीब पचासों व्यक्ति शामिल होते हैं। गांव के लोगों ने ग्रामदान के संकल्प-पत्र पर भी हस्ताक्षर किये हैं। बिहार ग्रामदान अधिनियम एक्ट के अंतर्गत संपुष्टि भी हो चुकी है। आज वह गांव कंकला ग्रामस्वराज्य की दृष्टि से एक उदाहरण है। साम्यवाद, सत्संग और ग्रामस्वराज्य तीनों को स्वीकार करता है। कैसे ? धीरेनदा कह रहे हैं। हिंदुस्तान की यही विशेषता है। यहां के लोगों ने कभी भी अपना विचार किसी पर थोपा नहीं है। दूसरों को अपने विचार में "कन्वर्ट" करने का प्रयास नहीं किया है। जब और जहां किसी नये विचार, नये दर्शन

की उत्पत्ति हुई उसकी सही बातों को हजम कर लिया और उसे अपना बना कर दुनिया के सामने रखा। यह हिंदुस्तानी प्रतिभा है। इसी प्रतिभा के बल पर ही हिंदुस्तान ने कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी अपना अस्तित्व बनाये रखा है। इस गांव में जो कुछ हो रहा है उसमें यही प्रतिभा काम कर रही है।

* * *

बैलगाडी चली जा रही है।

अगला पडाव। उनका निवास आठ हाथ लंबी, चार हाथ चौडी और पांच हाथ ऊंची छोटी-सी झोंपडी। आधे हिस्से को घेर कर भूसा रखा था और आधे हिस्से में मवेशीखाना था। वही मवेशीखाना सफाई कर उनके रहनेयोग्य बनाया गया था। चौकी पर उनका बिछावन बिछाया जा चुका था। मैंने उस कमरे में प्रवेश किया तो नाक पर रुमाल रखना पडा। धीरेनदा बोले... "गांवों के जीवन से इतनी नफरत है तो गांव में काम क्या करोगे?..." दोपहर में एक व्यक्ति एक घर के हिसाब से किसानों के घर में भोजन किया।

शाम को धीरेनदा की मीटिंग। करीब दो सौ व्यक्ति – किसान और मजदूर – आ जुटे हैं। धीरेनदा अपनी फोल्डिंग चेयर पर बैठे किसानों से कह रहे हैं, "आपको ही इस ग्रामस्वराज्य की क्रांति की अगुवाई करनी है। मजदूरों से अपने संबंध अच्छे बनाने हैं... मैत्री का हाथ बढाना है।"

सभा समाप्त होने को है। धीरेनदा कह रहे हैं, "तीन वर्षों से सहरसा में मेरी लोकगंगा यात्रा चल रही है। लोकगंगा यात्रा का सारा खर्च गांव के लोग ही वहन करते हैं। मैं तथा लोकगंगा यात्रा के अन्य साथी देश-विदेश के लोगों से संपर्क रखते हैं। संपर्क करने में प्रति माह करीब पंद्रह रुपये खर्च होते हैं। एक

माह में मेरे पंद्रह पडाव होते हैं। हर पडाव पर मैं एक रुपया आप लोगों से लेता हूं। इस सभा में मैं अपना प्लेट घुमाऊंगा। हर एक व्यक्ति दस पैसे से अधिक और दो पैसे से कम उस प्लेट में न डाले। जब एक रुपया पूरा हो जायेगा तो प्लेट घुमाना बंद कर दिया जायेगा।" रुपया पूरा होते ही प्लेट घुमाना बंद कर दिया जाता है।

सभा समाप्त।

सुबह साढे सात के करीब दो शिक्षक मिलने आये। आते ही मास्टरसाहब ने पूछा, "आप सार्वजनिक स्थान को छोड कर अंत्यजन के घरों में अपना निवास क्यों रखते हैं ?"

धीरेनदा बोले, "अगर कोई गाडी दल-दल में फंस गयी हो तो उसे नीचे से टांड (सहारा) डाल कर निकालना होगा या ऊपर से खींचना होगा ?"

"नीचे से टांड डाल कर निकालना होगा !"

"आज पूरा समाज दलदल में फंस गया है। समाज को इस दलदल से निकालने के लिए समाज के सबसे निचले स्तर के लोगों को तैयार करना होगा। इसलिए हम अंत्यजन के पास आये हैं। हम उनके घरों में ठहरते हैं। उनकी समस्याओं से वाकिफ होते हैं और उनको क्रांति के लिए तैयार करते हैं।"

"ये लोग आपकी बात समझ भी नहीं पाते हैं।"

"जो मेरी बात समझ पाते हैं वे मेरे पास आयेंगे ही। जो नहीं समझ पाते हैं उनके घर जा कर समझाना ही मेरा काम है।"

शिक्षक अपनी बातों का उत्तर पा चुके थे। उन्हें समाधान हो गया था।

सात बजे नाश्ता कर के धीरेनदा लोकदर्शन के लिए चले। साथ में उनकी कुर्सी। आगे-आगे एक ग्रामीण जा रहा था।

धीरेनदा उसे रोकते हैं, "तुम मेरी पंडागीरी करना।" 'क्या मतलब ?' धीरेनदा कहने लगे – "तुम जब तीर्थयात्रा में जाते हो तो तीर्थों में दर्शन करने के लिए पंडों के पास जाते हो न ? आज तुम्हें मेरी पंडागीरी करनी होगी।"

उसने हंस कर अपनी स्वीकृति दे दी।

धीरेनदा एक दरवाजे पर पहुंचे। घरवाला दरवाजे पर बैठा था। घरवालों ने प्रणाम किया। धीरेनदा ने अपनी कुर्सी बिछवायी, "मैं आपके दर्शन के लिए आया हूं।"

गुरुपति ने कहा, "धन्य भाग। आप मेरे घर पधारे हैं।"

उन्होंने कहा – "आज नेपाल में राजतंत्र है। नेपाल में जनता राजा और ऑफिस का दर्शन करने जाती है। हमारे देश में लोकतंत्र है। लोकतंत्र में जनता के सेवक या ऑफिसर को लोगों का दर्शन करने जाना चाहिए या नहीं ? लेकिन आप लोग उलटा करते हैं। वास्तव में आज जनता के नौकर हैं – सरकारी पदाधिकारी, उनका दर्शन करने हम जाते हैं। क्या इस तरह से काम चलेगा ? अगर आप अपने मजदूर को प्रतिदिन घर पर जा कर प्रणाम करें, उनकी खुशामद करें तो आपकी खेती हो नहीं सकेगी। उसी तरह उन अफसरों की खुशामद से काम नहीं होगा। आप लोग अपने गांव को संगठित कीजिए। जब आप और आपका गांव मजबूत होगा तो गांव की संगठित शक्ति के समक्ष आपकी सेवा करने के लिए सब झुकेंगे। यही बात मैं आपको बताने आया हूं। आपकी शक्ति का भान आपको कराना ही मेरे लोकदर्शन का वास्तविक उद्देश्य है। इसी काम के लिए मैं आपके घर आया हूं। अच्छा, नमस्कार।"

शाम को साढे सात बजे मजदूरों की सभा। मुख्य प्रश्न था कि भूदान में मिली जमीन आदाताओं के पास नहीं रह पाती। दाता

उन्हें कब्जा नहीं देते हैं। धीरेनदा कहते हैं कि "एक भिखमंगा भीख मांगता है। दाता भीख देते हैं। लेकिन वे भिखमंगे से भीख छीन नहीं पाते। लेकिन भूदान में मिली जमीन आदाताओं के पास नहीं रह पाती। इसका क्या कारण है? भिखमंगा भीख मांगने की मेहनत करता है, लेकिन भूदान किसान कभी भी भूदान मांगने की मेहनत नहीं करना चाहता। इसी लिए उनकी जमीन दाता छीन लेते हैं। अगर गरीब किसान और मजदूर किसानों से जमीन मांगना शुरू कर दें तो उन्हें जमीन अवश्य मिलेगी और उनको दी गयी जमीन पुनः छीनी नहीं जायेगी।" एक ने कहा – "मेरे मांगने से जमीन नहीं मिलती है।" धीरेनदा कहने लगे, "जमीन मांगने की भी एक तरकीब होगी। यों ही आपको कोई जमीन नहीं देगा। जमीन मांगने से पूर्व प्रत्येक व्यक्ति को दाता बनना पडेगा। महीने में एक दिन की मजदूरी और एक सेर अनाज दे कर ग्रामकोष जमा करें। उस ग्रामकोष का विनियोग ग्राम के हित में करें। तब आप किसी से दान मांगने के अधिकारी बनेंगे। जब आप जमीन मांगने जायें तो गांव के सभी व्यक्ति एक-साथ जायें। जब आप लोग संगठित हो कर जमीन मांगने जायेंगे तो किसान अवश्य दान देंगे। जमीन मांगने का काम प्रति दिन चलता रहे।"

नरेंद्रभाई और विद्याबहन धीरेनदा से भेंट करने के लिए सेवाग्राम से आये। बातचीत चल रही थी। लोकगंगा यात्रा कब तक चलेगी, यह पूछने पर धीरेनदा कह रहे थे, "मेरी यही इच्छा है कि मैं गाडी पर जब अगले पडाव के लिए प्रस्थान करूं तो स्वस्थ रहूं। लेकिन जब मुझे अगले पडाव पर उतारो तो पता चले कि मैं मर चुका हूं। ऐसी मृत्यु मैं चाहता हूं।

तीसरे दिन की सुबह फिर वही क्रम। सतीश... सतीश... सतीश... दादा की आवाज।

विनाश-लीला

गौतम

पता नहीं मनुष्य इतना क्यों विनाश के पीछे पडा है! केवल नाश नहीं विनाश की ही हरकत मनुष्य करता है। जंगलों का विनाश, चरागाहों का विनाश, गोधन का विनाश, विनाशक-संहारक शस्त्रों की होड! और अब सुनिए वन्य पशुओं के विनाश की कहानी!

विविध प्रकार के वन्यपशुओं के लिए अफ्रीका प्रसिद्ध है। अफ्रीका के शेर, अफ्रीका के बाघ, अफ्रीका के हाथी, अफ्रीका के गेंडे, अफ्रीका के वनमानुष-गोरिल्ला, अफ्रीका के जिराफ और झीब्रे और अफ्रीका के हिप्पो और मगर, इन सारे वन्यजीवों से मध्य अफ्रीका भरा था। दुनियाभर से लाखों लोग इन्हें देखने अफ्रीका जाते हैं। केनिया के बडे-बडे सुरक्षित जंगलों की कितनी कहानियां हम सुनते हैं!

लेकिन आज अफ्रीका में क्या हो रहा है। झांबेजी नदी के चारों ओर के इन वन्य जीवों पर मनुष्य का आक्रमण दिनों-दिन बढ रहा है। लडाइयां, अकाल, बढती जनसंख्या, भ्रष्टाचार, लोभ, तथा चोरशिकारी, सब मिल कर इन जीवों पर टूट पड रहे हैं।

एक चीते को देखने मोटरों का जमघट हो जाता है। अभी केनिया के वन्यजीवों से भरपूर अभयारण्य में एक चीते को देखने 60 मोटरें उसे घेरे खडी थीं। एक जमाने में इसे हाथियों का देश कहते थे। अब वे हाथी कहीं दूर घने जंगलों में डर कर छुप गये हैं।

काला गेंडा! अफ्रीका का विशिष्ट जंगली जानवर! बडा रौबदार, भारीभरकम शरीरवाला! 7 करोड वर्ष से अफ्रीका की झांबेजी नदी की घाटी में रहनेवाला! क्या है उसकी हालत। 1970 में 65000 गेंडे थे, अब वे केवल 4500 रह गये हैं। उनकी तुरंत रक्षा न की गयी तो चोरशिकारियों से उनका भी बचना मुश्किल

है। मानव के इतिहास में एक सस्तन प्राणी के विनाश की ऐसी मिसाल मिलना मुश्किल है। केनिया देश के साओ के अभयारण्य में कुछ ही वर्ष पहले 6000 गेंडे थे। एक दुपहरी में 40 गेंडे न दीख पडे तो दिन बेकार गया ऐसा समझा जाता था। 1970 में केनिया देश में 20,000 से भी अधिक गेंडे थे। आज मुश्किल से 400 बचे हैं। वह रखवालदार तथा कांटे के तारों के अंदर होने से बचे हैं। झांबिया में 1970 में 12000 थे आज 300 के लगभग बचे हैं। मध्य अफ्रीका के 3000 में से अब केवल 170 शेष रहे हैं। गेंडे का सींग यही उसकी सबसे मूल्यवान वस्तु है। मरे हुए गेंडे के शरीर से 10-15 मिनिट में उसे निकाला जा सकता है। उसका मुख्य बाजार उत्तरी येमेन में है। खंजीर की पकड बनाने के लिए रईस लोग, शेख लोग उसका उपयोग करते हैं। एशिया में दवा के रूप में भी उसका उपयोग किया जाता है। थोक बाजार में 1970 में 400/ रु. किलो कीमत थी, वह आज 2600/- रु. किलो हो गयी है और चिल्लर में कहीं कहीं 160.000/- रु. किलो की कीमत मिल रही है।

और हाथी! एक जमाने में राजाओं के और सरदारों के वैभव की निशानी! क्या है इंद्र की सवारी की दशा! थोडे से वर्षों में ही चोरशिकारियों ने मध्य अफ्रीका गणतंत्र के 11000 हाथियों में से 8000 को मार डाला है। हवाई निरीक्षण में देखा कि जगह-जगह हाथियों के शव सड रहे हैं, कई जगह कंकाल पडे हैं। जिंदा हाथियों के मुकाबले लाशों की संख्या ही अधिक नजर आयी। उस देश के राष्ट्रपति एक क्षेत्र को देखने गये तो इन चोर-शिकारियों ने उन पर भी गोली चलायी। आजकल सुधरी हुई बंदूकें, स्वयंचलित मशीनगनें आदि शस्त्र इनको बडी आसानी से मिल जाते हैं। अलावा सरकारी उच्च अफसरों का संरक्षण भी इन्हें मिल जाता है। छह साल पहले चाड देश में 15000 हाथी थे

आज 3000 बचे हैं। दादा ईदी अमीन के देश युगांडा में तो 20000 में से 3000 बचे हैं। अनियंत्रित सेना ने भी हाथियों को मार कर हाथीदांत से खूब कमाई की। झाहिरे के 60% तो केनिया के 80% हाथी समाप्त हो चुके हैं। सोमालिया और आयवरी कोस्ट जिस देश का नाम ही हाथीदांत पर से पडा है वहां तो हाथी करीब-करीब समाप्त हो चुके हैं। टांजानिया के एक अभयारण्य में जहां करीब एक लाख हाथी घूमा करते थे अब बहुत ही थोडे बचे हैं।

हाथीदांत का धंधा बडे जोर से चल रहा है। 600 करोड रुपये के इस धंदे के लिए पिछले साल 60,000 हाथी मारे गये। हाथीदांत की कीमतें भी तेजी से बढ रही हैं। 13 पौंड के दांत के लिए 5500/– रु. और 30 पौंड के दांत के लिए 22000– रु. कीमत मिल रही है।

गेंडे के जैसी बुरी हालत अभी हाथियों की नहीं हुई है पर वैसा होते देर नहीं लगेगी। सारे अफ्रीका खंड में 7-8 लाख हाथी बचे होंगे ऐसा अंदाज है। बडे हाथी काफी मार डाले गये हैं तो अब बच्चे और हथिनियों की हत्या में भी तेजी आ रही है। कुछ साल पहले बाजार में आनेवाले हाथीदांत का औसत वजन 21 पौंड था अब वह 13 पौंड रह गया है।

मनुष्य के रहने के लिए अनुपयुक्त तथा दुर्गम प्रदेशों में या कुछ खानगी जंगलों में तथा अभयारण्यों में ही अब ये वन्यजीव बचे हैं। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ रही है, सहारा की मरु-भूमि का विस्तार हो रहा है वैसे-वैसे इन स्थानों में भी औदासीन्य फैल रहा है।

सरकार की ओर से और स्वयंसेवी संगठनों की ओर से इन हत्याओं को रोकने की कोशिश हो रही है। लेकिन अभी तो इन चोरशिकारियों का पलडा भारी नजर आ रहा है। ⚜

आश्रम-वृत्त

मैत्री - आ श्र म : अ स म

5 जुलाई से 15 जुलाई तक बच्चों का शिविर चला। शिविर की तारीख जैसी निकट आती थी बच्चों के पत्रों की भरमार शुरू हुई थी। सब पत्रों का सार था, "आश्रम में आने की आतुरता बढ रही है।"

5 जुलाई की दोपहर से शिविर के लिए बच्चों का आना आरंभ हुआ। पिछले वर्ष जो लडके, लडकियां आये थे उन्होंने नये लडके, लडकियों का प्रेम से स्वागत किया। शाम को बाबा-घर सजाया गया। शिविर का शुभ आरंभ 75 वर्ष की एक ब्रह्मचारिणी महिला ने दीपक प्रज्वलित कर किया। बच्चों में नौ वर्ष से ले कर 13 वर्ष तक की उम्र के बच्चे थे। प्रातः 4 बजे से दिनक्रम आरंभ होता था। कार्य सुचारुरूप से चले इसलिए काम का बंटवारा किया गया। सफाई, कृषि, खेल आदि सांस्कृतिक वर्ग की जिम्मेवारी दी गयी। बच्चों को रोजाना गांधी-विनोबा विचार की जानकारी दी जाती थी। एक दिन बच्चों ने चावल के खेत में रोप लगाने में मदद की। शाम को खेल, भजन, गीत इत्यादि सांस्कृतिक कार्यक्रम में बच्चों को आनंद आया। एक दिन तीन प्रकार के खेल खेले गये। एक खेल में भगवान को हरएक ने चिट्ठी लिखी। दूसरे एक खेल में हरएक को लेख लिखने के लिए विषय दिया गया, "तुम्हारी दुनिया का तुम्हारा स्वप्न !" तीसरा खेल था, भगवान के लिए कोई उपहार दें। तीनों खेलों में बच्चे रममाण हो गये थे। भगवान के लिए उपहार में एक मुस्लिम लडके ने जेट विमान बना

कर दिया, किसी ने नौका बनायी, किसी ने घर। समापन के दिन आसपास के लोग और बच्चों के अभिभावक आये। माताओं को बहुत गौरव महसूस हुआ कि उनके बच्चे "बाबा विनोबा के आश्रम में अच्छे संस्कार पाने आये हैं।" ... आश्रम के नजदीक हवाई अड्डा है, अरुणाचल कॉलनी है वहां से भी सफेदपोश्त समाज के लोग आये। बच्चों ने शंकराचार्य का संस्कृत श्लोक गाया। बाद में करीब 19 बच्चों ने अपने अनुभव बताये। किसी ने कहा, "हमें मच्छरदानी लगाना भी नहीं आता था। यहीं सबकुछ सीखा। . ." किसी ने कहा, "हम अपने बर्तन धोने कुएं पर जाते थे। एक ही कुवां, एक ही बालटी और धोनेवाले हम इतनी ज्यादा संख्या में बच्चे। फिर भी मजा आया। . . ." एक लडकी ने कहा, "यहां मैंने सुना कि बाबा को करेला पसंद नहीं था। लेकिन वे जब आश्रम में पहुंचे तब गांधीजी ने उन्हें करेले की सब्जी परोसी। बाबा ने वह पहले खा ली। गांधीजी ने सोचा इसे यह सब्जी पसंद दीखती है तो उन्होंने दुबारा परोसी। तब से बाबा ने तय किया कि मुझे करेला पसंद करना चाहिए। इतना ही नहीं, खाने में ऐसी पसंदगी, नापसंदगी नहीं रखनी चाहिए। इस कहानी से मुझे बोध मिला। मुझे भी परवल अच्छा नहीं लगता लेकिन बाबा की याद कर के खाऊंगी।"

बच्चों को प्रसाद वितरण किया गया। आश्रमवासियों ने हर बच्चे को तिलक लगाया। बुजुर्गों ने आशीर्वाद तथा शुभेच्छा व्यक्त की। सब बच्चे बिदा हुए। आश्रम में पूर्ववत् शांति छा गयी।

* * *

हर इतवार को गांव के बच्चे आते हैं। दोपहर तीन बजे से चार बजे तक उनकी बैठक होती है। 'नामघोषा' के मंगलाचरण की प्रार्थना के बाद उन्हें प्रसाद के तौर पर मौसम का फल ककडी,

लीची इत्यादि दिया जाता है। हर बच्चा अपनी-अपनी बात कहता है। कभी किसी के हाथ से गलती हुई तो वह भी बच्चा खुले दिल से बताता है। उस बात को ले कर बच्चों को समझाया जाता है। बच्चे भगवान से प्रार्थना करते हैं, दुबारा गलती न करने का निश्चय करते हैं। इससे वातावरण भक्तिमय बन जाता है।

इन्हीं बच्चों ने एक दिन के शिविर की मांग की। जुलाई मास के शिविर में आसपास के गांवों के बच्चे आये थे। आश्रम के नजदीक के यानी उज्ज्वलपुर, कमलाबारी गांव के बच्चे इतवार को आते हैं। उन्हीं के उत्साह से एक इतवार को शिविर करने का तय हुआ। हर बच्चा एक किलो चावल और एक रुपया जमा करेगा यह तय रहा। बडा उत्साह आया बच्चों को। रविवार के पहले शुक्रवार को चावल और पैसा जमा करने बच्चे आश्रम में आये। सामान की सूचि बच्चों से ही बनवायी। उस रविवार को सुबह छः बजे से बच्चों का आगमन शुरू हुआ। लकडी के दो-चार टुकडे, केले के पत्ते, एक जोडी कपडा, नोटबुक, पेन्सिल ऐंसी चीजें हाथ में लिये एकेक बच्चा आता गया।

प्रार्थना से शिविर आरंभ हुआ। सुबह सफाई, नाश्ता, वर्ग, दोपहर में भोजन, आराम। फिर वर्ग, रात में भोजन के पश्चात् प्रार्थना और आरती से शिविर समाप्त हुआ। गुवाहाटी से सुवन्तीबहन आयी थीं। उन्होंने बच्चों को बढिया खेल सिखाया। संध्या समय बच्चों के माता पिता देखने आये कि अपने बच्चे क्या कर रहे हैं। उन्हें बहुत खुशी हुई। वे कहते थे, "हर रविवार बच्चे आश्रम में आने लगे हैं तब से उनमें उत्साह आया है। और वे हमें अच्छे प्रश्न भी करने लगे हैं। उन्हें आश्रम में अच्छा वातावरण मिलता है यह देख कर हमें प्रसन्नता होती है।"

– लक्ष्मी

ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार

वर्षा की शीतल बूंदों से भीगी धरती ने चारों ओर भक्ति और प्रेम की हरियाली रूपी चादर ओढी है। और इधर भक्तिरस से सराबोर चादर सब ओर बिछायी जाती है, चातुर्मास के आगमन पर। चातुर्मास यानी व्रतपूजा, अनुष्ठान इत्यादि का महापर्व। सावन, भादो की धाराएं प्रभु की करुणा के रूप में बरसती रहती हैं और अनेकों को प्रेरणा देती हैं, भक्तिधारा में नहाने की। अंतरतम में बसे प्रभु के दर्शन के लिए कोई पूजापाठ करती हैं, ध्यान, चिंतन करती हैं। किसी ने कहा, "चातुर्मास में हररोज दो घंटा श्रम खेती में करने का मैंने तय किया है। आओ रे! कौन शामिल होगा हमारे साथ इस नियम में?" किसी ने कहा, "मैंने सेवा का व्रत लिया है। जिसे भी शारीरिक सेवा की जरूरत होगी मैं उसके पास पहुंच जाऊंगी। बिना थके सबकी सेवा करूंगी।" किसी ने शाम का भोजन छोडा, किसी ने अन्य कुछ। रात्रि सोने से पूर्व कुछ बहनें मिल कर बाबाकुटी में ध्यान करती हैं। कुछ भरतराम-मंदिर में प्रदक्षिणा करती हैं।

* * *

हमारी सबकी आदरभाजन सुशीलादीदी की तबीयत में गत दो-तीन महीनों से उतार-चढाव आता रहता है। भूख की कमी और अरुचि होने से आहार काफी कम हुआ है। मोसंबी का रस, मुनक्का का पानी, नींबू शहद पानी, इस तरह का आहार है। वह भी भूख और इच्छा रहने पर ही लिया जाता है। मुश्किल से 400 कॅलरीज दिनभर में लेती होंगी। पेट में आंव व गॅसेस की तकलीफ होने के कारण आहार के विषय में अत्यंत सावधानी बरतनी होती है। ऐसी स्थिति में शरीर का वजन उत्तरोत्तर कम होना स्वाभाविक

है। बावजूद इसके प्राकृतिक चिकित्सा पर दीदी की अटल निष्ठा है। शुद्ध और प्रकृति प्रदत्त साधनों का उपयोग कर के प्राकृतिक जीवन जीने का उनका पूरा प्रयत्न रहता है। इसी कारण पिछले दस वर्षों से कैंसर जैसा असाध्य रोग होने पर भी उन्हें अभी तक कोई खास कष्ट, दर्द आदि नहीं है।

दीदी के स्वास्थ्य की खबर सुन कर आश्रम से दूर रहनेवाले साथियों को चिंता यहां खींच लाती है। हमारी कालिन्दीताई एक वर्ष के लिए बाबा के जन्मग्राम – गागोदे – में बसी हैं। वे भी दीदी की खबर सुन कर आयीं। सर्वनारायणभाई, (गोरक्षा शिविर, बंबई) भी आये हैं। निर्मलाबहन (देशपांडे) भी उनके पिताजी के निधन के बाद खास दीदी से मिलने आयीं थीं। वैसे ही हमारे बंबई-स्थित, डॉ. किसनभाई कोटेचा आये थे। उन्होंने हिमालय की पूरी यात्रा की थी उसके चित्र (स्लाइडस्) हमें दिखाये। उनकी अभिरुचि, कलापूर्ण दृष्टि का परिचय उन चित्रों ने दिया। अब दीदी के स्वास्थ्य में सुधार है।

* * *

आम्रवृक्ष के पत्ते, केले के पत्ते की टहनी, ऐसी एक-एक चीज लक्ष्मीबहन को दी जा रही थी। उनसे पूछा जाता था तो कहती थीं, "आज पूछने की जरूरत नहीं। फूल, पत्ती, टहनी, जो कुछ आप लायेंगी मुझे दीजिए" . . . जन्माष्टमी के निमित्त कृष्ण की झांकी जो सजानी है। ज्ञानभवन में सजावट की गयी। भक्ति प्रेम, श्रद्धा, निष्ठा से भजन गाये गये और रात ठीक 12 बजे शंख-ध्वनि के साथ-साथ कृष्ण भगवान की आरती गायी गयी! अजन्मा कृष्ण हर वर्ष सावन कृष्ण अष्टमी की रात में जन्म लेता है! कैसी अनहोनी?

* * *

बंबई के डॉ. मनुभाई कोठारी तथा डॉ. श्रीमती ज्योतिबेन कोठारी एक दिन हमारे बीच थे। मनुभाई कुशल सर्जन माने जाते हैं। जीवनमरण की घटना को ले कर उन्होंने एक किताब लिखी है, नाम है 'मृत्योपनिषद'। मनुभाई ने हमें उनकी इस किताब के विषय का परिचय दिया। उन्होंने कहा, कैंसर ऐसा रोग नहीं जो किसी व्यक्ति विशेष को ही होता है – वह किसी को भी हो सकता है।... रोग और मृत्यु दोनों इतने डेमोक्रॅटीक (गणतांत्रिक) हैं! यह हमारे लिए शिक्षण का विषय है। किसी भी व्यक्ति को इसने कभी भी छोडा नहीं। किसी रोग से मृत्यु हुई ऐसा मानना ठीक नहीं। मृत्यु का क्षण निश्चित है।..."

* * *

हमारे भाई गोविंदन्‌जी योरप के प्रवास पर हैं। उनके पत्र यहां नियमित आते रहते हैं। अक्तूबर अंत तक वे वापस लौटेंगे।

"यह राजस्थान की मीरा है।" बाबा कहा करते थे, श्री मणिबहन को देख कर। हमारे वृहत् परिवार के श्री महावीर-प्रसाद केडिया तथा मणिबहन एक माह हमारे बीच हैं।

इधर तीन-चार वर्षों से वर्षा में भी शांतभाव से बहनेवाली धाम ने सावन में एकदिन अपनी मर्यादा लांघ कर बापू, बाबा की समाधि को अपने पेट में समाया और भरतराम मंदिर की सीढीयों का प्रक्षालन भी किया। करीब आठ-दस घंटा यातायात बंद-सा रहा। प्रेस में काम करनेवाले सेवक उस दिन दोपहर घर (पवनार गांव में) जा नहीं सके थे। उस दिन नदी का रूप विशेष सुंदर था। नदी की समुद्र जैसी आवाज इन दिनों दिन-भर, रात-भर सुनायी देती है।

सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की

विनोबा

हम मानते हैं कि भक्ति का उद्गम 'भीति' से नहीं 'प्रीति' से हुआ है। मनुष्य के लिए जितनी भीति स्वाभाविक है, उससे कहीं अधिक स्वाभाविक है प्रीति। भीति तो मनुष्य और जानवर दोनों को होती है। किंतु मनुष्य को भीति से पहले प्रीति का अनुभव होता है। आज भी हम देखते हैं कि हर प्राणी माता के उदर से जन्म लेने के बाद पहले-पहल माता का प्रेम पाता है। इस तरह उसका प्रथम अनुभव 'प्रीति' का ही है। बाद में उसे 'भीति' का अनुभव आता है। हमने भक्ति के जो सबसे पुराने स्तोत्र पढे, उनमें ईश्वर को 'माता-पिता' कहा गया है। भक्ति-मार्ग में ईश्वर के भयानक रूप का उतना ध्यान नहीं, जितना प्रेममय रूप का है। ईश्वर के अनंत गुणों में कुछ गुण ऐसे भी होते हैं, जो हजम नहीं हो पाते, हमें भयावह मालूम पडते हैं। इसलिए उनसे भय लगता है। लेकिन यह निश्चित है कि प्राचीन काल में भक्ति का आरंभ भय से नहीं, प्रेम से ही हुआ। आज भी हमें भीति और प्रीति दोनों का अनुभव हो रहा है। पहले के लोग सृष्टि का भयानक रूप देख कर डरते थे। आज दुनिया में एटम बम का भय छाया हुआ है। डर कम नहीं हुआ, पर उसका रूप बदल गया। इस तरह भय और प्रेम, भक्ति के ये दोनों प्रकार प्राचीन काल से अब तक चले आ रहे हैं।

अब यह विचारणीय है कि भक्ति-मार्ग और कर्म-मार्ग के बीच क्या संबंध है ? कर्म-मार्ग में कर्म का प्रतिफल मिलता है – जैसा करो वैसा पाओ, जबकि भक्ति-मार्ग में परमेश्वर से क्षमा मांगी जाती है। तो क्या भक्ति से कर्म के फल टल जाते हैं ? नहीं, भक्ति-मार्ग से कर्म का अटल नियम टल नहीं सकता। फिर भी भगवान कर्म का फल भोगने का धैर्य देता है। हमने बुरा काम किया तो उसका फल टलेगा तो नहीं, पर उसका परिणाम चित्त पर न हो, इतना धैर्य हममें आ जाये तो समझ लें कि बच गये। भक्ति से परमेश्वर हमें कर्म-फल के भय से बचाता है।

भक्ति-मार्ग में आपको आदत हो जाती है कि सामने जो चल रहा है, उसे 'प्रभु की लीला' समझें। ज्ञानमार्गी कहते हैं कि वह सारा स्वप्न है, मिथ्या है। कर्ममार्गी कहते हैं कि वह सारा परिस्थिति का परिणाम है। लेकिन भक्तिमार्गी कहते हैं कि यह सारा खेल है, नाटक है। परमेश्वर अनेक रूप ले कर लीला कर रहा है।

आज तक हिंदुस्तान का भक्तिमार्ग मूर्ति-ध्यान-परायण ही रहा है। लेकिन अब जमाना आया है कि भक्तिमार्ग को अपना मुख्य स्वरूप सेवा-परायणता ही बनाना होगा। जब देश के लोग भूखे-नंगे और रोग से पीडित हों, तब उनकी सेवा में लग जाना ही भक्ति का सर्वोत्तम कार्यक्रम है। सेवा-परायणता ही भक्तिमार्ग की आत्मा है। दूसरों को हम स्वामी समझें और उनके सेवक बनें। भक्तों को बहुत नम्र बनना चाहिए। इसके आगे हमें व्यक्ति की सेवा और समाज की भक्ति अपनानी होगी।

ब्रह्म-निर्वाण दिन का कार्यक्रम

तारीख 15 नवंबर बाबा के ब्रह्म-निर्वाण की तारीख। इस पुनीत अवसर पर, तारीख 15 तथा 16 को भारतभर के स्नेहीजनों का मित्र-मिलन ब्रह्मविद्या-मंदिर में होगा, जैसे कि पिछले साल हुआ था। सभी साथी-मित्रों से साग्रह अनुरोध है कि वे इन दिनों अवश्य उपस्थित रहने की कृपा करें। हर मित्र की उपस्थितिमात्र से ही मिलन के आनंद में वृद्धि होगी। हमारा परिवार विशाल, व्यापक है। कार्य की व्यस्तता के कारण परस्पर मिलना सहजता से होता नहीं है। बाबा की पुण्यस्मृति में इस प्रकार से मिलने पर आनंद और बल प्राप्त होगा। यह 'मिलन' सभी का है इसलिए हम सभी एक-दूसरों को इसका आमंत्रण दे रहे हैं। कृपया अपने आने का समय तथा दिन तारीख 31 अक्तूबर तक "मित्र-मिलन, ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार, 442111" को सूचित करें, ताकि प्रबंध करने में सुविधा हो।

मित्रों से

इस अंक के बाद, नवंबर में विशेषांक प्रकाशित होगा; अक्तूबर का अंक प्रकाशित नहीं होगा। इस विशेषांक का नाम "साम्ययोग का समाज-दर्शन" रहेगा। इसके अंदाजन 250 पृष्ठ होंगे। मूल्य पंद्रह रुपये होगा। इस वर्ष दुबारा अंक भेजना संभव नहीं होगा। इसलिए जो अपना अंक रजिस्ट्री से मंगवाना चाहते हैं वे कृपया अग्रिम 3/- रु. डाकखर्च भेजें। जिनको अधिक प्रतियां चाहिए वे भी कृपया अग्रिम राशि भेजें।

प्रति अंक : 3.00रु. : वार्षिक चंदा 25 से 40 रु. ऐच्छिक : लागत खर्च : 30 रु.
विदेश के लिए : सामुद्रीडाक 75-00; हवाईडाक 125-00
मुद्रक प्रकाशक : चन्नम्मा हल्लिकेरी, ब्रह्मविद्या-मंदिर प्रकाशन, पवनार
चंदा भेजने का पता – 'मैत्री', ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार 442111 (वर्धा)

इस अंक में

737	गीताई-चिंतनिका : विवरण	विनोबा
743	पथदीप : प्राण-प्रतिष्ठा के पंच-प्राण	विनोबा
756	एक वेद-मंत्र का अर्थ	विनोबा
760	जीवन-निष्ठा का वरदान	दादा धर्माधिकारी
764	तुम्हें प्रणाम कर...	वीणा
765	सन्निधि में	शिवाजी भावे
788	नाखुदा	भाविनी
792	तुज सगुण म्हणों कीं निर्गुण रे...	शीला
799	तेरी चिर समाधि के पास...	ज्योति
801	पत्र-संपुट	–
805	बस, अब मैं देखूं क्या ?	गोविंदन्
806	खामोश ! यात्रा जारी है...	सतीश नारायण
811	विनाश-लीला	गौतम
814	आश्रम-वृत्त	–
820	सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की	विनोबा
822	ब्रह्म-निर्वाण दिन का कार्यक्रम	–
823	मित्रों से	–

संपादक
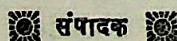
सुशीला अग्रवाल, कुसुम देशपांडे

मीरा भट्ट, कालिन्दी

रजि. नं. 43696/84 डी. ए. - 217

ईश्वर-स्वरूप नीला ही नीला दीख रहा है।
आकाश की तरह पोला नहीं,
प्रेमल,
लेकिन प्रेम में पक्षपात की कल्पना आ जा सकती है।
वैसे भी नहीं,
समत्वयुक्त . . .

ज्ञानदेव-चिंतनिका — विनोबा